वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

# विकासात्मक जनसंचार

# 3

ग्रामीण विकास की समस्या - 1 एवं 2
जनसंचार एवं संस्कृति

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
(Master of Journalism & Mass Communication)

**विकासात्मक जनसंचार 3**

## पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

* **प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा**
  कुलपति
  कोटा खुला विश्वविद्यालय,कोटा
  (अध्यक्ष समिति)

* **डॉ. अब्दुल वहीद खान**
  निदेशक (विकास एवं प्रशिक्षण)
  कॉमनवेल्थ सेण्टर ऑफ लर्निंग
  वैंकूवर (कनाडा)

* **राधेश्याम शर्मा**
  पूर्व-महानिदेशक
  माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
  विश्वविद्यालय, भोपाल(म. प्र.)

* **डॉ. ओ.पी. केजरीवाल**
  निदेशक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी
  तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

* **प्रो. ए.के. बनर्जी**
  पूर्व-अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग
  बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
  वाराणसी

* **प्रो. जे.एस. यादव**
  भारतीय जनसंचार संस्थान
  नई दिल्ली

* **डॉ. भंवर सुराणा**
  ब्यूरो चीफ/ विशेष संवाददाता
  दैनिक हिंदुस्तान
  जयपुर

* **डॉ. रमेश जैन**
  अध्यक्ष-जनसंचार विभाग
  कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## संयोजक

**डॉ. रमेश जैन-** अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालzय, कोटा

## पाठ-संपादक एवं भाषा-संपादक

पाठ-संपादक
**डॉ. रमेश जैन**
अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भाषा-संपादक
**डॉ. विष्णु पंकज**
वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार
जयपुर

## अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

* डॉ. आर.वी. व्यास, कुलपति
* डॉ. एच.बी. नन्दवाना, विभागाध्यक्ष
* डॉ. पी.के. शर्मा, निदेशक, पा.सा.उ. एवं वि. विभाग

## पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

* योगेन्द्र गोयल
  सहायक उत्पादन अधिकारी

**सर्वाधिकार सुरक्षित ! इस पाठ्यक्रम का कोई भी अंश कोटा खुला विश्वविद्यालय/ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना या मिम्योग्राफी(चक्रमुद) अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करना वर्जित है।**

**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाता रोड, कोटा से प्राप्त की जा सकती हैं।**

## पाठ लेखक


1. **डॉ. रमेश जैन**
अध्यक्ष जनसंचार विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय

2. **राम कुमार**
वरिष्ठ जनसंचारकर्मी
कोटा

3. **डॉ. महेंद्र मधुप**
संयुक्त निदेशक प्रशिक्षण एवं प्रचार
राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड,
जयपुर

4. **डॉ. विष्णु पंकज**
वरिष्ठ जनसंचारकर्मी
जयपुर

5. **डॉ. अनाम जैतली**
अध्यक्ष राजनीति शास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

6. **गुलाब बत्रा**
वरिष्ठ संवाददाता
यूनिवार्ता, समाचार समिति, जयपुर

7. **के.एस. मेहता**
भोपाल

8. **डॉ. महेन्द्र भानावत**
वरिष्ठ जनसंचारकर्मी
उदयपुर

9. **डॉ. महीपाल**
नई दिल्ली


## खंड एवं इकाई परिचय

### खंड परिचय

पत्रकारिता एवं जनसंचार स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का सप्तम पत्र 'विकासात्मक जनसंचार' का है। विकासात्मक जनसंचार का लक्ष्य केवन विकास कार्यो तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि सामाजिक अभिशापों से मुक्ति दिलाने की दिशा मे विकास पत्रकारिता और एलेक्ट्रोनिक जनसंचार माध्यमों का विशेष योगदान है।

विकासात्मक जनसंचार 3 एवं 4 में ग्रामीण विकास के समस्याएं, ग्रामीण विकाश हेतु कुशल प्रशिक्षण जरूरी, जनसंचार एवं संस्कृति, उन्नत कृषि में जनसंचार माध्यमों का योगदान , शैक्षणिक तकनोलजी तथा विकासात्मक जनसंचार शोध एक समीक्षा आदि इकाइयों के माध्यम से विसह और जनसंचार के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है ।

### इकाई परिचय

**इकाई 8-** 'ग्रामीण विकास की समस्याएं' से सबद्ध हैं। इस इकाई में ग्रामीण सामाजिक जीवन, ग्रामीण विकास के अवधारणा, ग्रामीण विकास की समस्याएं, निर्धनता की समस्या, सिक्षा ओर साक्षरता की समस्या, जनसंख्या वृद्धि की समस्या, खाद्य सुरक्षा और पोषाहार, स्वास्थ्य एवं रोगों की समस्याएं, भूमि व्यवस्था एवं सुधार, ऋण ग्रस्तता की समस्या, अवसंरचनात्मक विकास की समस्या, ग्रामीण आवास समस्या, पेयजल एवं ग्रामीणस्वच्छता, कृषि विकास की समस्या, पर्यावरणीय समस्याएं, ग्रामीण उधयोग की समस्याएं, ग्रामीण बेरोजगारी की समस्याएं, प्रशासनिक असंवेदशीलता आदि बिन्दुओं की विस्तृत विवेचना की गई है । भारतीय ग्रामों में आज की अनेक समस्याएं विद्यमान है।

**इकाई 9-** ग्रामीण विकास की समस्याएं-2 (ग्रामीण विकास हेतु कुशल प्रशिक्षण जरूरी) में बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताएं- प्राथमिक शिक्षा, सुरक्षित पेयजल, पानी की गुणवत्ता, गरीब परिवारों को आवास, पोषाहार, गाँव एवं बस्तियों को आपस में सड़कों द्वारा जोड़ना तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं खाद्य सुरक्षा आदि की विस्तृत विवेचना की गई है । इसके

अतिरिक्त भूमि सुधार, पंचायती राज, जोत की भूमि की उच्चतम सीमा आदि बिन्दुओं पीआर अठेष्ठ प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण विकास के लिए कुशल प्रशिक्षण नीति की जरूरत है । इस तथ्य को भी उजागर किया गया है।

**इकाई 10-** 'जनसंचार एवं संस्कृति' से सबद्ध है। इस इकाई में जनसंचार तथा संस्कृति का संबाधात्मक परिप्रेक्ष्य, जनसंचार तथा संस्कृति के अन्तः क्रियात्मकता, जनसंचार तथा संस्कृति के समन्वित मुलाधारों का सामाजिक प्रभाव आदि से परिचय कराया गया है ।

**इकाई 11-** 'उन्नत कृषि में जनसंचार माध्यमों का योगदान' विषयक है। इस इकाई में उन्नत कृषि में जनसंचार माध्यमों का पुयोग किस प्रकार क्र जा सकता है? इसकी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत इकाई में की गई हाए। समाचारपत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म तथा अन्य जनसंचार माध्यमों के द्वारा कृषि में क्या परिवर्तन किए जा सकते हैं? आदि के व्याख्या यहाँ की गई है ।

**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय**

एम. जे. एम. सी. -7

विकासात्मक जनसंचार

| **पाठ्यक्रम - सप्तम** |
|---|
| **खण्ड- तृतीय** |

# 3


| | | |
|---|---|---|
| इकाई 8 | ग्रामीण विकास की समस्याएं - 1 | 8–30 |
| इकाई 9 | ग्रामीण विकास की समस्याएं - 2 (ग्रामीण विकास हेतु कुशल प्रशिक्षण जरूरी) | 31–57 |
| इकाई 10 | जनसंचार एवं संस्कृति | 58–68 |
| इकाई 11 | उन्नत कृषि में जनसंचार माध्यमों का योगदान | 69–81 |

# इकाई 8 ग्रामीण विकास की समस्याएं - 1

**इकाई की रूपरेखा**


8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 ग्रामीण सामाजिक जीवन

8.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा

8.4 ग्रामीण विकास की समस्याएं

- 8.4.1 निर्धनता की समस्याएं
- 8.4.2 शिक्षा और साक्षरता की समस्याएं
- 8.4.3 जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं
- 8.4.4 खाद्य सुरक्षा और पोषाहार
- 8.4.5 स्वास्थ एवं रोगों की समस्याएं
- 8.4.6 भूमि व्यवस्था एवं सुधार
- 8.4.7 ऋणग्रस्ता की समस्या
- 8.4.8 अवसरंचनात्मक विकास की समस्या
- 8.4.9 ग्रामीण आवास समस्या
- 8.4.10 पेयजल एवं ग्रामीण स्वच्छता
- 8.4.11 कृषि विकास की समस्या
- 8.4.12 पर्यावरणीय समस्याएं
- 8.4.13 ग्रामीण उद्योगों की समस्याएं
- 8.4.14 ग्रामीण बेरोजगारी की समस्याe
- 8.4.15 जनसंचार और सम्प्रेषण की समस्याएं
- 8.4.16 प्रशासनिक असंवेदनशीलता

8.5 सारांश

8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.7 निबंधात्मक प्रश्न उद्देश्य


## 8.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य भारत में वर्तमान ग्रामीण विकास की समस्याओं की जानकरी प्रदान करना है । ग्रामीण विकास समस्याओं को मोटे तौर पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में समझ सकते हैं। लेकिन यहाँ अध्ययन की दृष्टि से इन समस्याओं को कई बिन्दुओं में रखकर अलग- अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है । अत: इस इकाई में ग्रामीण समस्याओं के साथ-साथ निम्न बिन्दुओं पर पर्याप्त जानकारी प्रदान की गई है -

1.ग्रामीण सामाजिक जीवन

2. ग्रामीण विकास की अवधारणा

3. ग्रामीण विकास की समस्याएं

इसके अतिरिक्त आप ग्रामीण विकास की दिशा में किए जा रहे विभिन्न सरकारी प्रयासों एवं कार्यक्रमों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिन्हें नियोजित विकास के रूप में संचालित किया गया है ।

## 8.1 प्रस्तावना

भारत की लगभग तीन-चौथाई आबादी ग्रामों में बसती है । भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण व्यापक रूप से ग्रामीण जनजीवन का पोषक है । ग्रामीण भारत की ऐसी अनेक समस्याएं हैं जो उसके विकास में बाधक हैं । वस्तुत: ग्रामीण विकास एक ऐसी समग्र अवधारणा है जो ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित है । ग्रामीण विकास की दिशा में देश की स्वतंत्रता के पूर्व और बाद में अनेक प्रयास किए गए किन्तु ग्रामीण विकास की समस्याएं अभी भी पूरी तरह से उन्मूलित नहीं हुई हैं । इस समस्याओं में मुख्य रूप से जो समस्याएं है उनमें निर्धनता, निरक्षरता, रोग और बीमारी, जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, यातायात, एवं संचार, स्वास्थ्य, कुपोषण, पेयजल एवं स्वच्छता का अभाव, ऋणग्रस्तता, कृषि और ग्रामीण उद्योगों के विकास संबंधी समस्याएं मुख्य हैं । इस इकाई के अन्र्तगत: ग्रामीण विकास की समस्याओं का विवेचन भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना और ग्रामीण जीवन के संदर्भ में किया गया है ।

## 8.2 ग्रामीण सामाजिक जीवन

भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन की अपनी विशेषताएं है । इन विशेषताओं में पारिवारात्मकता, संयुक्त परिवार, जाति व्यवस्था, धर्म की प्रधानता, कृषि कर्म की प्रधानता, सामाजिक जीवन में एकरूपता, जनमत एवं परम्परा का महत्व, सामुदायिक सामजस्य, परम्परागत, राजनैतिक जीवन, लोक-सांस्कृतिक जीवन की प्रधानता, स्त्रियों की निम्न स्थिति आदि मुख्य है । भारतीय ग्रामीण जीवन की जो प्रमुख समस्याएँ हैं उनमें निर्धनता, अशिक्षा और बेराजगारी आदि मुख्य है । इसके अलावा अन्य जो समस्याएं हैं वे भारतीय ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष से जुड़ी हुई हैं इनमें बाल- विवाह, दहेज, जातिवाद, और अस्पृश्यता आदि मुख्य है । वस्तुत: भारतीय ग्रामीण समाज एक विकासोन्मुख समाज है जो शिक्षा साक्षरता, स्वास्थ्य पोषण, पेयजल आवास और मनोरंजन के क्षेत्र में आगे बढ रहा है ।

## 8.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा

एक लम्बे समय तक विकास का आशय आर्थिक वृद्धि के संदर्भ में उत्पादकता और तकनीकी प्रगति के रूप में समझा जाता रहा जिससे लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सके । किन्तु अब इस अवधारणा में परिवर्तन हो गया है और विकास में मानव कारक प्रमुख हो गया है । वस्तुत: विकास को आगे बढ़ाने वाला बल और विकास का अंतिम

लक्ष्य मनुष्य बन गया है । यही कारण है कि विकास के नियोजक और प्रशासक मानव संसाधन और सामाजिक विकास के प्रबल पक्षधर बन गए । वस्तुत: किसी समाज के विकास में अधिकांश समस्याएं मानव मनोवृत्तियों और सामाजिक संस्थाओं की संरचना से सम्बन्धित होती हैं । अत: आर्थिक के साथ- साथ सामाजिक विकास की आवश्यक है ।

कोई भी दो समाज समरूप नहीं होते हैं । प्रत्येक समाज की अपनी विशेषताएँ होती हैं। विकास सामाजिक परिवर्तन की सहभागी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य सामाजिक और राष्ट्रीय लक्ष्यों को आगे बढाना है जिससे बहुसंख्यक लोग उन्नत जीवन प्राप्त कर सकें । वस्तुत: विकास का उद्देश्य उन मानव मूल्यों को प्राप्त करने हेतु एक निष्ठ प्रयास करना है जो समानता, स्वतंत्रता और उन्नत जीवन के पोषक हैं ।

ग्रामीण विकास की तीन मान्यताओं का उल्लेख किया गया है -

1. जहाँ कृषि एवं कृषि सम्बन्धी रोजगार समृद्ध हो रहे हैं वहाँ भूख और निर्धनता कम है।
2. जहाँ जनसंख्या का दबाव अधिक है, वहाँ भूख और गरीबी अधिक है ।
3. जहाँ कृषि समृद्ध है और जनसंख्या में परिवर्तन नहीं है वहाँ मुद्रा स्फीति के कारण भूख और गरीबी अधिक है ।

ग्रामीण विकास के सातत्य हेतु अलग- अलग विचारकों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं । विकास की कोई एक नीति या नियोजन प्रक्रिया नहीं हो सकती है । अत: प्रत्येक समाज अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक विशेषताओं या परिस्थितियों के आधार पर ग्रामीण विकस की आयोजना करता है । आर्थिक विकास की दृष्टि से विचारकों के कई सम्प्रदाय हैं । कुछ अर्थशास्त्री वस्तुओं और सेवाओं के न्यायपूर्ण वितरण पर बल देते हैं । तो कुछ भारी उद्योग एवं औद्योगिक विकास पर । इसी तरह कुछ विद्वानों का मत है कि सरकार को उत्पादन, वितरण एवं व्यापार आदि में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए ।

## 8.4 ग्रामीण विकास की समस्याएं

भारतीय ग्राम कभी आत्मनिर्भर और अपने में पूर्ण थे किन्तु बदली सामाजिक- आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में ब्रिटिश शासन के दौरान ये समस्या ग्रस्त हो गए | कृषि और औद्योगिक विकास अवरुद्ध हो गया | फलतः औपनिवेशिक गुलामी के दौरान देश में अनेक सामाजिक- आर्थिक समस्याएं बड़ी । इनसे ग्रामीण जीवन भी अछूता भी नहीं रहा । वर्तमान में ग्रामीण विकास की समस्याओं को निम्नवत् समझा जा सकता है।

### 8.4.1 निर्धनता की समस्या

भारत में ग्रामीण विकास की प्रमुख समस्या निर्धनता है । निर्धनता एक ऐसी समस्या है जब व्यक्ति अपना और अपने आश्रित लोगों का भरण पोषण नहीं कर पाता है । देश में निर्धनता की स्थिति में परिवर्तन आ रहा है । सन् 1973-74 में 59.9 प्रतिशत व्यक्ति निर्धनता से नीचे थे जो 1993-94 में घटकर 36 प्रतिशत रह गई लेकिन इन 20 वर्षो में निर्धन लोगों की संख्या में ज्यादा अन्तर नहीं आया । सन् 1973-74 में देश में कुल निर्धन

32.1 करोड़ थे और 1993-94 में भी यह संख्या 32.0 करोड़ आँकी गई । इसी तरह ग्रामीण क्षेत्र में इसी अवधि में क्रमश: 26.1 और 24.4 करोड़ निर्धन आँके गये। कहने का तात्पर्य यह है कि जनसंख्या वृद्धि के कारण निर्धनों की संख्या यथा बनी हुई है ।

ग्रामीण निर्धनता के उन्मूलन हेतु देश की स्वतंत्रता के बाद से अनेक कार्यक्रम चलाये गए जिनका मूल उद्देश्य लोगों को मजदूरी/रोजगारी प्रदान करना था । सामुदायिक विकास एव कृषि विस्तार सेवाओं के आलावा ऐसे कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण नीचे तालिका में दिया गया है ।

| क्रं. सं | योजना का नाम | प्रारम्भ का वर्ष | मार्च 1998 तक कुल व्यय राशि | 1997-1998 के मूल्य पर राशि | 1980-81 की कीमत पर | उत्पादित मानव दिवस मिलियन | 1998 तक चले कार्यक्रम के वर्ष |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम | 1960 | 29.5 | 395.2 | 112.5 | 137.0 | 8 |
| 2. | ग्रामीण रोजगार क्रैश स्कीम | 1971 | 122.6 | 975.5 | 222.6 | 316.0 | 3 |
| 3. | पायलेट इन्टैंसिव रूरल एम्पलायमैन्ट प्रोग्राम | 1972 | 8.5 | 62.5 | 14.2 | 18.2 | 2 |
| 4. | रुरल वर्क्स प्रोग्राम | 1971 | 70.0 | 436.2 | 1150.0 | 185.5 | 5 |
| 5. | फूड फॉर वर्क प्रोग्राम | 1977 | 1150.50 | 5552.6 | 1362.2 | 979.3 | 3 |
| 6. | राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम | 1980 | 4774.0 | 13952.0 | 2995.4 | 2839.1 | 9 |
| 7. | ग्रामीण भूमिहीन रोजगार उत्पादक कार्यक्रम | 1983 | 2973.0 | 5515.5 | 1420.7 | 1414.8 | 6 |
| 8. | जवाहर रोजगार योजना | 1989 | 27440.0 | 43228.7 | 14450.0 | 6969.1 | |
| 9. | सुनिश्चित रोजगार योजना 1993 | 1993 | 8706.0 | 9821.7 | 2175.6 | 1413.0 | |
| | योग | | | 79970.6 | 22868 | 14272.5 | |

स्रोत - रुरल डिव्हलपमेंट सिस्टम, 2001 पृष्ठ 102

### 8.4.2 शिक्षा और साक्षरता की समस्याए

भारत में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति एक बड़ी उपलब्धि है लेकिन निरक्षरता की समस्या भी कम व्यापक नहीं है । 1990 में 15 वर्ष के ऊपर प्रौढ़ निरक्षरों की संख्या 2807 करोड़ थी जो विश्व के कुल प्रौढ़ निरक्षरों का 29.6 प्रतिशत थी । सन् 1991 की जनगणना के आधार पर देश में साक्षरता दर 52.21 प्रतिशत थी जिसमें पुरुष साक्षरता दर 64.13 तथा महिला साक्षरता दर 39.29 प्रतिशत आँकी गई । ग्रामीण क्षेत्रों में व्यास निरक्षरता

के कारणों में जो कारण प्रमुख हैं उनमें दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा पर अल्प व्यय, शिक्षकों की कम संख्या, रूढ़ प्रशासन तंत्र, आर्थिक कठिनाइयां, भौगोलिक परिस्थितियां आदि हैं ।

उपरोक्त कारणों के अलावा ग्रामीण शिक्षा एवं साक्षरता में अनेक कारण भी बाधक हैं । जिनमें ग्रामीण लोगों का दृष्टिकोण और रुचि मुख्य हैं | ग्रामीण लोग सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के प्रति ज्यादा जागरूक नहीं होते हैं एवं वे यथास्थिति मैं जीवन गुजारना पसंद करते हैं ।

देश में लगभग 10.60 लाख ग्रामीण बस्तियां हैं जिनमें से मात्र 8.84 अर्थात् 83.4 प्रतिशत में ही शिक्षा पहुँच सकी । शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार के फलस्वरूप बच्चों के घरों के पास शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं । छटवाँ अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण ( 1993 ) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 83.4 प्रतिशत आवासीय बस्तियों के समीप पैदल चलने योग्य दूरी या एक किमी. के अन्दर प्राथमिक शिक्षा सुविधा उपलब्ध है । माध्यमिक स्कूल शिक्षा के संदर्भ में 76.15 प्रतिशत बस्तियों में यह सुविधा पैदल चलने योग्य दूरी से लेकर 3 किमी. के दायरे में है ।

स्पष्ट है कि लगभग 16.6 प्रतिशत बस्तियों में एक किमी. के अन्दर प्राथमिक स्कूल नहीं है और 23.85 प्रतिशत बस्तियों में 3 किमी. के अन्दर उच्च प्राथमिक स्कूल नहीं है । एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि देश में 41,198 प्राथमिक और 5638 उच्च प्राथमिक स्कूल छप्पर झोपड़ियों, टेन्टस या खुले स्थानों में लगाए जाते हैं । इन स्कूलों में सामान्य सुविधायें भी उपलब्ध नहीं है । इसी सर्वेक्षण के अनुसार 4000 स्कूल बिना शिक्षण के हैं और 1.15 लाख विद्यालय एक शिक्षक द्वारा संचालित हैं । इस स्थिति में सुधार हेतु आपरेशन ब्लैकबोर्ड 1987 में चलाया गया है ।

**ग्रामीण बस्तियों में शैक्षिक सुविधाएं**

| क्रं | सुविधा | सुविधा युक्त बस्तियाँ (हजार) | | प्रतिशत वृद्धि |
|---|---|---|---|---|
| | | 1986 | 1993 | |
| 1. | प्राथमिक स्तर | 502.3 | 528.0 | 5.1 |
| 2. | उच्च प्राथमिक स्तर | 129.0 | 147.0 | 14.0 |
| 3. | माध्यमिक स्तर | 43.5 | 53.2 | 22.3 |
| 4. | उच्चतर माध्यमिक स्तर | 8.9 | 12.0 | 34.8 |
| 5. | बस्तियों की कुल संख्या | 981.9 | 1060.6 | 8.0 |

स्रोत - नाइन्थ फाइव ईयर प्लान, 1997-2002. पृ. 1०4

### 8.4.3 जनसंख्या वृद्धि

भारत मूलत: ग्राम जीवन प्रधान देश है लेकिन धीरे- धीरे नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप नगरी जनसंख्या का अनुपात बढ़ रहा है । विगत सदी में भारत में ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि को निम्नवत समझा जा सकता है ।

**ग्रामीण तथा नगरी जनसंख्या**

| वर्ष | जनसंख्या करोड़ | | योग | कुल जनसंख्या का प्रतिशसत | |
|---|---|---|---|---|---|
| | ग्रामीण | नगरी | | ग्रामीण | नगरी |
| 1951 | 29.9 | 6.2 | 36.10 | 82.7 | 17.3 |
| 1961 | 30.02 | 7.9 | 43.92 | 82.2 | 18.0 |
| 1971 | 43.9 | 10.9 | 54.81 | 80.1 | 19.9 |
| 1981 | 52.4 | 15.9 | 68.57 | 76.7 | 23.3 |
| 1991 | 62.9 | 21.8 | 84.63 | 74.3 | 25.7 |
| 2001 | - | - | 102.75 | - | - |

स्रोत- भारत 2001, पृ. 18

सन् 2001 'की जनगणना के अनुसार भारत समग्र जनसंख्या 102, 70,15, 247 आंकी गई जिसमें से 53, 12, 77.078 पुरुष और 49,57, 38, 169 महिलाएं हैं । देश की प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 933 है जबकि 1991 में ये 927 थी ।

आगामी दशकों में जनसंख्या संरचना में क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ जो तात्कालिक परिवर्तन होंगे उससे लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप उत्पादक रोजगार की व्यवस्था करना कोई आसान कार्य नहीं है । सामाजिक जटिलताओं के परिप्रेक्ष्य में इस मुद्दे पर ध्यान देने की जरूरत है । बेरोजगारी एवं घोर गरीबी के साथ जनसंख्या वृद्धि की समस्या से मौजूदा सामाजिक-आर्थिक संकटों के और ज्यादा गहराने की संभावना है । जनसंख्या और विकास नीतियाँ जब व्यक्ति, परिवार और सामुदायिक आवश्यकताओं के प्रति अनुकूल होती है तो वे एक दूसरे को सकारात्मक सहयोग करती हैं । महिलाओं की विकास प्रक्रिया के सभी आयामों में सहभागिता तभी संभव है जब उनकी स्थिति एवं भूमिका को प्रभावशाली बनाया जाए । किन्तु अनियोजित प्रजनन के सर्वाधिक कष्ट उठाने वाले बच्चे एवं महिलाए ही हैं । अत: मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ।

### 8.4.4 खाद्य सुरक्षा और पोषाहार

विकासशील देशों की एक प्रमुख खाद्य सुरक्षा और पोषाहार' की है ।इस समस्या का संबंध ग्रामीण जन जीवन से है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता बेरोजगारी और जनसंख्या वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक है । सन् 1996 में सम्पन्न विश्व खाद्य सम्मेलन की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि विश्व में 84 करोड़ लोग भुखमरी के शिकार हैं । भुखमरी की समस्या विशेष रूप से पिछड़े हुए देशों में है । विश्व खाद्य और कृषि संगठन के छटवे सर्वेक्षण के रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि पूर्व और दक्षिणी एशिया में 32 प्रतिशत, एशिया में 30 प्रतिशत और सबसहारन अफ्रीका में 26 प्रतिशत लोग भुखमरी के शिकार हैं । इसी रिपोर्ट में उल्लेखनीय किया गया है कि भारत में 21 प्रतिशत जनता भुखमरी के शिकार हैं ।

स्वत्रंतता के बाद देश में दो प्रमुख पोषण समस्याएं थीं । इनमें पहली समस्या अकाल का भय और भुखमरी की थी जिसका कारण निम्न कृषि उत्पादकता और उचित वितरण व्यवस्था का अभाव मुख्य था । दूसरी समस्या विकट ऊर्जा न्यूनता की थी जिसका कारण

निर्धनता, निम्न साक्षरता दर, पेयजल, सफाई और स्वास्थ्य सुरक्षा की कमी आदि कारक थे । इसका परिणाम यह हुआ है कि बच्चों और प्रौढ़ों के संक्रामक लोगों की व्यापकता बढ़ी । इस स्थिति से निपटने के लिए देश के योजनाकारों ने बहुआयामी पोषाहार उपयोग को अपनाया ।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रति व्यक्ति पोषक वसा की मात्रा 20 किलोग्राम प्रतिवर्ष होनी चाहिए। किन्तु भारत में 1997-98 में प्रति व्यक्ति खाद्य तेलों की उपलब्धता 7.6 किलोग्राम वार्षिक थी । इससे प्रतिव्यक्ति वसा उपभोग का अंदाज लगाया जा सकता है । देश में 1950-51 में अनाज की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता 395 ग्राम थी जो 1999 में बढ़कर 407 ग्राम तक पहुंच गई लेकिन इस अवधि में दालों की उपलब्धता प्रति व्यक्ति 60 ग्राम से घटकर 33 ग्राम हो गई ।

यहाँ यह अन्तर समझ लेना आवश्यक है कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धता और उपभोग में अन्तर है । अनाज, दालें, खाद्य तेल एवं दूध आदि का प्रति व्यक्ति उपभोग उतना नहीं है जितनी कि देश में इन वस्तुओं की उपलब्धता है । इसका कारण ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त गरीबी है । देश में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग का औसत निम्न है -

**प्रति व्यक्ति खाद्य पदार्थो का उपभोग क्रिग्रा. मासिक**

| **खाद्य पदार्थ** | **ग्रामीण** | | **नगरीय** | |
|---|---|---|---|---|
| | 1987-88 | 1993-94 | 1987-88 | 1993-94 |
| अनाज | 14.40 | 13.40 | 11.20 | 41.60 |
| दालें | 0.25 | 0.24 | 0.34 | 0.33 |
| खाद्य तेल | 0.33 | 0.37 | 0.54 | 0.56 |
| दूध | 3.20 | 3.94 | 4.26 | 4.89 |

स्रोत - नाईन्ध फाईव ईयर प्लान, 199-2002, वाल्युम II

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अनाज को छोड़कर शेष पोषक पदार्थ- दालें, खाद्य तेल और दूध आदि का उपयोग नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र मैं कम है । ग्रामीण क्षेत्रों में दालों, खाद्य तेलों और दूध आदि के क्रय की क्षमता लोगों की नहीं है । जनसामान्य के मध्य व्याप्त निर्धनता और बेरोजगारी के कारण यह स्थिति उत्पन्न होती है ।

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा के उद्देश्य से 10 हजार करोड़ रूपए की एक योजना घोषित की गई है । इस योजना को सम्प्रर्ण योजना (SGRY) का नाम दिया गया है । इसके पूर्व काम के बदले अनाज (Food for work) कार्यक्रम चलाया गया था । किन्तु इस योजना हेतु जो राशि तय की गई है उसमें केन्द्र सरकार 8750 करोड रूपए तथा राज्य 1250 करोड़ रूपए का योगदान करेंगे । इस योजना के अंतर्गत जहाँ खाद्य सुरक्षा में श्रमिक को कम से कम 5 किग्रा. अनाज मजदूरी के रूप में दिया जाएगा वहीं ग्रामीण क्षेत्र में स्थाई परिसम्पत्तियों का निर्माण भी किया जा सकेगा ।

### 8.4.5 स्वास्थ्य एवं रोगों की समस्याएं

परम्परागत रूप से ग्रामीण लोग बीमारी और रोगों का कारण अज्ञानता के कारण देवी-देवताओं का प्रकोप, भूत- प्रेत बाधा, अभिशाप और अपने पूर्व कर्मो का फल मानते हैं । स्वास्थ्य के प्रति उनकी अवधारणा वैज्ञानिक नहीं है । अत: बहुसंख्यक ग्रामीण रोगों का उपचार झाड़- फूक, पूजा-पाठ और तंत्र-मंत्र आदि के द्वारा करते है । इस अर्थ में ग्रामीण चिकित्सा पद्धति को लोक चिकित्सा पद्धति कहते है । ग्रामीण लोग रोगों की गंभीरता से पीडित होने पर भी चिकित्सा और उपचार हेतु कोशिश करते हैं |

वस्तुत: स्वास्थ्य और रोग दो विरोधी स्थितियां हैं । आम तौर पर बीमारी का तात्पर्य स्वस्थ्य हालत की बिदाई कह कहते हैं किन्तु यह कथन भ्रामक है । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार - 'स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक खुशहाली की एक अवस्था है और यह रोग या कमजोरी का अभाव मात्र नहीं है । ' यह स्वास्थ्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है । ग्रामीण क्षेत्रों में जिन रोगों का सर्वाधिक प्रकोप है उनमें मलेरिया, तपेदिक, दस्त, उल्टी, फाइलेरिया, कुष्ट रोग एवं अंधत्व और अन्य संक्रमक रोग मुख्य हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में अंधत्व या अंधेपन की समस्या सर्वाधिक है । देश में लगभग 1 25 करोड़ व्यक्ति अंधत्व के शिकार है । जिसमें से 80 प्रतिशत मोतियाबिंद के कारण अंधे हैं । ऐसा अनुमान है देश में 20 लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष अंधत्व के शिकार होते हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में जिन कारणों से लोगों की मृत्यु होती है उनमें सर्वाधिक मौतों का कारण श्वसन संबंधी रोग हैं । तत्पश्चात लोगों की मृत्यु संक्रमक और परजीवी रोगों से होती है । इसी तरह रक्त परिवाहन संबंधी रोग और महिलाओं में प्रसव पूर्व उत्पन्न प्रस्थितियों से भी बड़ी संख्या में महिलाएं मरती हैं । ग्रामीण क्षेत्र में प्रसव सुविधाओं की अत्याधिक कमी है ।

### 8.4.6 भूमि व्यवस्था एवं सुधार

देश में स्वतंत्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन प्राथमिकता दी गई । फलत: लाखों भूमिहीन भूमि के मालिक बन गए किन्तु इसके बावजूद देश में भूमि व्यवस्था और सुधार से संबंधित अनेक समस्याएं आज भी पड़ी हुई हैं । अतिरिक्त भूमि का आवंटन, जोत की सीमा का निर्धारण, चकबंदी, और भूमि स्वामित्व से जुड़ी हुई समस्याओं से भारतीय कृषि काफी हद तक प्रभावित हैं । सन् 1972 में केन्द्र सरकार द्वारा भूमि सुधार हेतु जो मार्गदर्शिका जारी की थी, उसके अनुसार गोवा और उत्तर भारत को छोड़कर शेष राज्यों में जोत सीमा विधान बना लिए गए थे किन्तु इनके क्रियान्वयन में शिथिलता बरती जाने के कारण भूमि सुधारों में अपेक्षित सफलता नहीं मिली ।

सातवीं योजना के अंत तक लगभग 72.2 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई थी जिसमें से 46.5 लाख एकड़ भूमि का वितरण किया जा चुका था । कुछ प्रदेशों में भूमि की चकबन्दी का कार्य प्रगति पर था । इसके अलावा इस योजना काल में अभिलेखों को अद्यतन करने की पहल की गई ।

आठवीं योजना के पूर्व तक क्रियात्मक जोतों को संख्या और उनमें घिरे क्षेत्रफल का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है । सन् 1970 -71 से 1990 - 91 के मध्य जो परिवर्तन हुआ है उसे नीचे कोष्ठक में प्रतिशत के रूप में दर्शाया गया है ।

**एभारत में क्रियात्मक जोतों की संख्या और क्षेत्र**

| क्रं | जोतें | जोतो की संख्या (मिलि.) | | जोतो के क्षेत्र (मि. हेक्टेयर | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | 1970-71 | 1990-91 | 1970-71 | 1990-91 |
| 1. | सीमान्त जोतें ( 1हेक्टे.से कम ) | 36 (51) | 62 (58) | 15 (9) | 25 (15) |
| 2. | लघु जोतें (1 से 4 हेक्टे.) | 24 (34) | 34 (33) | 49 (30) | 67 (41) |
| 3. | माध्यम जोतें (4 से 10 हेक्टे.) | 8 (11) | 8 (7) | 48 (30) | 45 (27) |
| 4. | बड़ी जोतें | 3 (4) | 2 (1) | 50 (31) | 29(17) |
| | योग | 71 | 106 (100) | 162 (100) | 166 (100) |

स्रोत - एग्रीकल्वर स्टेटिसटिक्स एट अ ग्लांस, 1996

सातवीं योजना में भूमि अभिलेखों के सुधार और उन्हें अघटन करने की प्रक्रिया प्रारंभ की गई । केन्द्र सहायित योजना के अन्तर्गत राजस्व प्रशासन को सूदृड़ करने और भूमि अभिलेखों को अघटन बनाने हेतु राज्यों को 20.8 करोड़ रूपए की परिव्यय रखा गया था जिसमें से मात्र 14 करोड़ रुपये ही व्यय किए गए थे ।

### 8.4.7 ऋणग्रस्तता की समस्या

ग्रामीण क्षेत्र में श्रमिक एवं लघु कृषकों की आय कम होने के कारण इन वर्गो के लोग प्राय: ऋणग्रस्त होते हैं । ग्रामीण श्रमिकों के ऋणग्रस्त परिवार पर 1987 - 88 में औसतन ऋण की राशि रू. 2014 थी और 1987 में ऐसे परिवारों का प्रतिशत 19.40 था । प्रदेश वार प्रति परिवार पर औसत ऋण की राशि और ऋणग्रस्तता परिवारों पर ऋण की राशि का आकलन निम्नवत पाया गया है ।

**एग्रामीण श्रमिक परिवारों में ऋणग्रस्तता**

| क्रं | प्रदेश | सभी वर्गो के परिवारों पर ऋण (1987-88) | |
|---|---|---|---|
| | | प्रति परिवार औसत ऋण रु. | ऋणग्रस्त परिवारों पर ऋण रु. |
| 1. | आन्ध्रप्रदेश | 1145 | 2140 |
| 2. | असम | 148 | 1113 |
| 3. | बिहार | 539 | 1606 |
| 4. | गुजरात | 450 | 1442 |
| 5. | हरियाणा | 1523 | 2810 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 6. | हिमाचल प्रदेश | 861 | 2650 |
| 7. | कर्नाटक | 569 | 1856 |
| 8. | केरल | 1026 | 2219 |
| 9. | मध्य प्रदेश | 635 | 1811 |
| 10. | महाराष्ट्र | 507 | 1498 |
| 11. | उड़ीसा | 503 | 1419 |
| 12. | पंजाब | 1255 | 2271 |
| 13. | राजस्थान | 1215 | 2541 |
| 14. | तमिलनाडू | 1053 | 2162 |
| 15. | उत्तर प्रदेश | 865 | 2851 |
| 16. | पश्चिम बंगाल | 710 | 1840 |
| | औसत | 1598 | 2014 |

स्रोत - बेसिक रूरल स्टेटिक्स, 1996

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सभी प्रमुख राज्यों में ग्रामीण परिवार ऋणग्रस्तता के शिकार हैं । वस्तुत: ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणग्रस्तता, श्रमिकों लघु एवं सीमान्त कृषकों दस्तकारों एवं निर्धनों के बीच ज्यादा व्याप्त है । इन वर्गो के पास उत्पादक रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं हैं । बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण एवं बैंकिंग सेवाओं के विस्तार से ग्रामीण क्षेत्र में ऋण व्यवस्था में बदलाव शुरू हो गया है। जब क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक पुराने शोषक वर्ग की जगह बड़े, मध्यम एवं लघु कृषकों के अलावा छोटे व्यवसायी वर्ग को भी ऋण सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं । सन् 1951 में कृषि क्षेत्र में 15.9 करोड रू. का ऋण वितरण किया गया जबकि दिसम्बर 1976 तक यह राशि 1334.88 करोड़ रूपए हो गई और सितम्बर 1983 तक 5400 करोड़ रू. के ऋण कृषि हेतु प्रदान किए गए । ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है इसलिए गाडगिल समिति ने क्षेत्र विकास एवं नरीमन समिति ने लीड बैंक स्कीम रखी है । सर्वप्रथम 1974 -79 कि बीच बैंकों द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के साथ जुड़ने की योजना तैयार की गई और निम्न लक्ष्य राके गए थे |

- ग्रामीण, अर्द्ध नगरीय साख- जमा अनुपात 60 प्रतिशत पहुंचना चाहिए ।
- अभिसंरचित प्राथमिक क्षेत्रों के लिए ऋण 33. 33 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 1980 तक 35 प्रतिशत कर दिया जाए।
- कम ब्याज दर पर याने चार प्रतिशत वार्षिक दर पर कमजोर वर्गो को ऋण प्रदान किया जाए ।

जुलाई 1969 में प्रमुख व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीय ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका ज्यादा हो गई है । जून, 1969 में जहाँ इन बैंकों की 1832 शाखायें ग्रामीण क्षेत्रों में थीं उनकी संख्या 1987 में बढ़कर 35,170 हो गई । इसी अवधि में

जमा राशि भी 145 करोड़ रूपए से बढ़कर 7,212 करोड़ रूपए हो गई । विगत दशकों में कृषि वित्त के क्षेत्रों में बैंकों का योगदान बढ़ रहा है ।

### 8.4.8 अवसंरचनात्मक विकास

ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है । इससे ग्रामीण लोगों का जीवन स्तर भी प्रभावित हुआ है । ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण, डाक सेवाओं और सड़को का विकास आवश्यक है । ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक सुविधाओं की स्थिति का आकलन निम्नवत है ।

**विद्युतीकरण** - विद्युत उपभोग विकास का एक सूचक है । अत: भारत में नियोजन की प्रक्रिया के अन्तर्गत ग्रामीण विद्युतीकरण को सामाजिक आर्थिक विकास के लक्ष्य के रूप में माना गया है । वस्तुत: ग्रामों में विद्युतीकरण को महज आर्थिक लागत के रूप में न देखा जाए बल्कि ग्रामीण लोगों के आधुनिकरण के एक निवेश के रूप में माना जाना चाहिए । छटवीं योजना तक 64 प्रतिशत गावों को विद्युतीकरण किया गया । जबकि सातवीं योजना के अंत तक 2०. 5 प्रतिशत और गांवों को विद्युतीकरण करने का लक्ष्य रखा गया । छोटे गांव में विद्युतीकरण की लागत ज्यादा होने से राज्य सरकारें ज्यादा रूचि नहीं ले रही हैं ।

**डाक सेवा** - डाक एक अनिवार्य नागरिक सेवा है जिसका संबंध प्रत्येक व्यक्ति से है । भारतीय डाक व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी सेवा है । भारत में डाक विभाग की स्थापना 1954 में की गई थी जबकि लगभग 700 डाक घर पहले से ही कार्यरत थे । देश में डाक सेवा का विस्तार धीरे-धीरे हुआ । धनादेश सेवा 1882 में, डाक जीवन सुरक्षा 1884 से, रेल डाक सेवा 1907 में, तथा वायु डाक सेवा 1911 में, प्रारंभ की गई थी । एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 2000 तक देश में कुल 1, 54, 551 डाक घर है । जिनमें से लगभग 1, 38, 149 पोस्ट आफिस ग्रामीण क्षेत्रों में सेवारत हैं । देश में औसत 5, 462 व्यक्तियों पर एक पोस्ट आफिस है जो औसतन 21. 26 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के लिए अपनी सेवाए प्रदान करता है । स्पष्ट है कि कई गांवों में डाक सेवा तो उपलब्ध है पर डाक घर नहीं ।

**सड़क विकास** - ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक- आर्थिक विकास हेतु सड़कों का अपना महत्व है । वस्तुत: सड़को के द्वारा न केवल यातायात और सामान ढोने में सहायता मिलती है। बल्कि सड़कें प्रदेश और ज्ञान की वाहक भी हैं । व्यापार व्यवसाय में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक और नैतिक विकास में सड़को की महत्वपूर्ण भूमिका है । भारत में सांतवी योजना तक सड़को की स्थिति का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है ।

**भारत में सड़कों की स्थिति**

| मद | इकाई | 1950-51 | 1960-61 | 1970-71 | 1979-80 | 1984-85 | वृद्धि दर प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कुल लंबी | किमी. | 397.62 | 705.0 | 917.0 | 1534.3 | 1772.2 | 4.49 |
| पक्का रोड | किमी. | 156.11 | 234.4 | 397.9 | 658.1 | 833.0 | 5.05 |
| कच्चा रोड़ | किमी. | 241.51 | 470.6 | 520.0 | 876.2 | 939.8 | 4.08 |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राष्ट्रीय मार्ग | किमी. | 1970.0 | 2376.9 | 2400.0 | 2900.0 | 3171.0 | 1.41 |
| सड़को से जुड़े गाँव संख्या | - | | - | - | 167376 | 2,08,938 | 4.531 |
| सड़कों से जुड़े गाँवों का प्रतिशत | - | | - | - | 28 | 35 | |

स्रोत - सेवेन्ध फाईव प्लान 1985 -90, वाल्युम 11 पृ. 205

ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक विकास के अन्तर्गत संचार, शिक्षा, यातायात, चिकित्सा, सिंचाई एवं ऊर्जा विकास से जुड़ी हुई सुविधाओं और सेवाओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

### 8.4.9 ग्रामीण आवास समस्या

मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं में भोजन और वस्त्र के बाद आवास मुख्य है । ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से आवास सुविधाए न्यूनतम मापदण्ड से भी नीचे है । वस्तुत: ग्रामीण क्षेत्रों में आवास समस्या को जटिल बनाने में जो कारण प्रमुख हैं उनमें जनसंख्या वृद्धि, संसाधनों का अभाव तकनीकी ज्ञान का अभाव और आवासीय सुविधाओं का अभाव प्रमुख है । ग्रामीण क्षेत्र में आवासीय सुविधाओं की स्थिति का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है।

**आवासीय सुविधाए**

| क्रं | सुविधा | 1998-99 | | 1993 | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | ग्रामीण | नगरी | ग्रामीण | नगरी |
| 1. | पेयजल आपूर्ति स्रोत | | | | |
| | नल | 15.47 | 72.11 | 18.9 | 7.04 |
| | कुआँ | 39.12 | 9.17 | 31.7 | 18.5 |
| | ट्यूब वैल व हैंडपम्प | 39.10 | 17.20 | 44.5 | 8.6 |
| | तालाब एवं पोखर | 2.19 | 0.28 | 1.3 | 0.4 |
| | नदी, झील व नहर | 2.42 | 0.32 | 1.7 | 0.4 |
| | अन्य स्रोत | 1.70 | 0.92 | 0.3 | 1.4 |
| | सभी स्रोत | 100 | 100 | 100 | 100 |
| 2. | प्रकाश व्यवस्था | | | | |
| | मिट्टी तेल | 69.17 | 22.63 | 61.4 | 17.2 |
| | विद्युत | 27.04 | 74.38 | 36.5 | 80.9 |
| | अन्य | 0.45 | 0.23 | 0.4 | 0.1 |
| | कोई प्रकाश नहीं | 3.21 | 2.59 | 1.7 | 1.7 |
| | अंकित नहीं | 1.13 | 0.17 | - | 0.1 |
| | सभी प्रकार | 100 | 100 | 100 | 100 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 3. | शौच सुविधाए | | | | |
| | फ्लश | 1.06 | 26.98 | 0.8 | 28.5 |
| | टैंक व्यवस्था | 3.70 | 25.98 | 5.5 | 29.6 |
| | सेवाए | 1.62 | 11.25 | 2.4 | 7.4 |
| | अन्य प्रकार | 4.37 | 4.29 | 5.2 | 3.8 |
| | कोई व्यवस्था नहीं | 89.28 | 31.11 | 85.2 | 30.6 |
| | सभी प्रकार | 100 | 100 | 100 | 100 |

स्रोत - नेशनल सेम्पल, सर्वे, 28 राउंट वॉ ( 1973-74, 44 वॉ राउंड) ( 1988-89 और 49 वॉ राउंड जन- जून 1993 )

भारत सरकार द्वारा सन् 2010 तक सभी के लिए आवास नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर जोर दिया गया । भारत की आबादी एक अरब को पार कर गई है । इस आबादी में से लगभग 33 करोड़ परिवार आवास सुविधा से वंचित हैं, जो देश के समक्ष आवास विकास की यह एक कठिन चुनौती है । आवास न केवल भोजन और वस्त्र जैसी बुनियादी आवश्यकता है बल्कि आर्थिक विकास के एक प्रमुख क्षेत्र है । इससे सीमेन्ट, स्टील एवं अन्य उद्योग जुड़े हैं जो कृषि के बाद द्वितीय प्रमुख रोजगार उत्पादक क्षेत्र है ।

वर्ष 1998-99 से 2 मिलियन ( 20 लाख) आवास इकाईयों के निर्माण की पहल की गई है । ताकि देश में बढ़ती आबादी की आवास सम्बन्धी जरूरतों को पूरा किया जा सके । सन् 2010 तक सभी के लिए आवास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नीतिगत आधार पर निम्न पहल की गई -

- प्रति वर्ष 20 लाख आवास कार्यक्रम
- मलिन बस्तियों में आवासीय दशाओं में सुधार के उद्देश्य से वाल्मिक-अम्बेडकर मलिन बस्ती आवास योजना का क्रियान्वयन ।
- राष्ट्रीय नगर स्वच्छता कार्यक्रम ।
- राष्ट्रीय आवास और प्राकृतवास नीति ।
- राष्ट्रीय मलिन बस्ती नीति का निर्माण करना ।
- सार्वजनिक एवं निजी भागीदारी सहकारिता और गैर संगठनों एवं केन्द्रीय भवन संगठनों की सहभागिता पर ज्यादा बल दिया जाए ।
- इसी के साथ आपदा और पर्यावरण मित्र तथा आर्थिक भवन प्रौद्योगिकी का उन्नयन करने पर जोर दिया गया है।

### 8.4.10 पेयजल एवं ग्रामीण स्वच्छता

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल और स्वच्छता की समस्याओं से लोगों की एक बड़ी संख्या प्रभावित है । ग्रामीण स्वास्थ्य की दृष्टि से पेयजल आपूर्ति और स्वच्छता पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

**(क) पेयजल समस्या**

ग्रामीण क्षेत्रों में भुखमरी और कुपोषण के साथ-साथ पेयजल का संकट भी गम्भीर है । वस्तुत: वर्तमान सभ्यता जल और ऊर्जा के व्यापक उपभोग पर आश्रित है । विकासशील देशों में विशेष रूप से जनसंख्या वृद्धि, कृषि और औद्योगिक विकास से ने केवल जल संसाधनों के दोहन में वृद्धि हुई है बल्कि इनके प्रदूषित होने का खतरा भी बढ़ा है । विकासशील देशों में जलआपूर्ति और स्वच्छता की समस्या को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1981-90 के दशक को अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति और स्वास्थ्य दशक घोषित किया । इस घोषणा का उद्देश्य वर्ष 1990 तक सभी को स्वच्छ जल तथा सफाई की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराना था।

देश में स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार द्वारा 1948 में नियुक्त 'पर्यावरण स्वास्थ्य विज्ञान समिति' ने सिफारिश की थी कि चालीस वर्ष की अवधि के अन्दर 90 प्रतिशत आबादी को जल आपूर्ति की सुविधाए प्राप्त हो जाना चाहिए किन्तु इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया । छटवीं योजना में सर्वेक्षित जल समस्याग्रस्त गांवों में से 38,748 गांव पेयजल की सुविधा से वंचित रह गए । तत्पश्चात् सातवीं योजना में जल प्रौद्योगिकी मिशन के अन्तर्गत 1,61,722 जल समस्यामूलक गाव चिन्हित किए गए । पेयजल मिशन के अन्तर्गत ऐसे गावों में कम से कम एक जल स्रोत उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया । प्रौद्योगिकी मिशन के अन्तर्गत अन्य प्राथमिकताऐं निम्नवत थीं ।

1. नये जल स्रोतों का पता लगाना ।
2. यह सुनिश्चित करना की नए स्रोतों से प्राप्त जल समुचित प्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा लोगों तक पहुँचाया जा सके |
3. जल की गुणवत्ता की जाँच करना और उपलब्ध जल मान्य गुणवत्ता का होना चाहिए।
4. जल प्रदूषण की रोकथाम करना ।
5. पारिस्थितिकीय स्थिरता को सुनिश्चित कर समुचित उपायों द्वारा जल की मात्रा और गुणवत्ता दीर्घकालिक आधार पर शिक्षित करना ।
6. जल की मात्रा एवं गुणवत्ता की संरक्षण के बारे में जनता को शिक्षित करना ।

देश में पेयजल आपूर्ति और सफाई हेतु विभिन्न योजनाओं में कुल बजट की जो राशियाँ निर्धारित की गई, उनका विवरण निम्नवत है ।

**पंचवर्षीय योजनाओं में पेयजल एवं स्वच्छता हेतु परिव्यय**

| क्रं | योजना | परिव्यय करोड़ | कुल योजना परिव्यय का प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रथम पंचवर्षीय योजना | 11 | 0.56 |
| 2. | द्वीतीय पंचवर्षीय योजना | 28 | 0.59 |
| 3. | तृतीय पंचवर्षीय योजना | 67 | 0.78 |
| 4. | चतुर्थ पंचवर्षीय योजना | 125 | 0.79 |
| 5. | पाँचवी पंचवर्षीय योजना | 481 | 1.22 |
| 6. | छटवी पंचवर्षीय योजना | 2,154 | 2.20 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 7. | सतवी पंचवर्षीय योजना | 3,551 | 1.97 |

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल आपूर्ति हेतु आठवीं एवं नवमी योजनाओं में ज्यादा ध्यान दिया गया ।

**(ख) ग्रामीण स्वच्छता**

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य और रहन-सहन से जुड़ी एक अन्य समस्या सफाई की है । मानव संसार में स्वच्छता का संबंध व्यक्ति की आदतों, रहन- सहन के तरीकों और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण से है । स्वच्छता के अभाव में अनेक प्रकार के रोग और मानसिक विकारों का जन्म होता है । गांधी जी ने लिओनेल कार्टिस के कथन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि हमारे गाव 'घूरे के ढेर' हैं उन्हें हमें आदर्श बस्तियों में बदलना है । उन्होंने हरिजन के एक अंक में (19.10.1937) में लिखा कि हमें अपने गांवों को अपने चुगल में जकड़ रखने वाली जिस विविध बीमारी का इलाज करना है । वह इस प्रकार है - सार्वजनिक स्वच्छता की कमी, पर्याप्त और पोषक आहार की कमी और ग्रामवासियों की जड़ता । गाँधी जी ने तीनों महत्वपूर्ण समस्याओं को उठाया ग्रामीण लोग प्राय: अपने घरों के आसपास कचड़े के ढेर लगा लेते हैं । एक तो कच्चे मकानों में वैसे ही सीलन और नमी रहती है, फिर उसके चारों ओर गोबर, कुड़ा एवं मैला आदि फेंकने से स्वच्छता की समस्या और ज्यादा जटिल हो जाती है । ग्रामीण स्वच्छता की दृष्टि से जिन कार्यों की ओर पहले ध्यान दिया जाना चाहिए, उनमें निम्न मुख्य कार्य हैं -

- ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालयों का निर्माण प्रत्येक घर में किया जाना चाहिए ।
- कुड़ा-कचरा केवल निर्धारित गइल में ही डाला जाए और गइढों को ढककर रखा जाए ।
- जल निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए ।
- सार्वजनिक जल स्रोत के आसपास सफाई रखी जाना चाहिए ।
- ग्रामीण नालियों और सड़को को क्रमश: पक्का बनाया जाए जिससे कीचड़-पानी एवं धूल आदि से बचाव किया जा सके ।
- ग्रामीण आवास व्यवस्था के प्रति और ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है ।
- ग्रामीण लोगों में स्वच्छता के प्रति चेतना जागृत की जाए जिससे वे व्यक्तिगत और सार्वजनिक सफाई के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपना सकें ।

अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक स्वच्छता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव है । एक स्वस्थ्य एवं खुशहाल समुदाय की कल्पना तभी साकार हो सकती है जब लोगों में नागरिकोचित दायित्वों के निर्वाह की चेतना व्याप्त हो1 अत: सामुदायिक स्वच्छता के प्रति लोगों में जो संस्कारशीलता पाई जाना चाहिए उसके विकास हेतु जनशिक्षा की आवश्यकता है । यहाँ सामुदायिक स्वच्छता से आशय उन सामान्य बातों के पालन से है जो ग्रामीण परिवेश को स्वच्छ बनाने रखने में सहायक है । सफाई की चेतना जागृत करने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है ।

पर्यावरण मानव स्वास्थ्य को कई प्रकार से प्रभावित करता है । मिट्टी, पानी एवं खाद्य पदार्थों में आयोडीन, जल में पलोराइड की ज्यादा मात्रा, खाद्य में श्रृंखलाओं में प्रदूषक आदि जन स्वास्थ्य के स्तर को प्रभावित करते हैं । ब्राजील में सम्पन्न पृथ्वी सम्मेलन के एजेन्डा

21 में पर्यावरण स्वास्थ्य के उन्नयन पर व्यापक विचार विमर्श किया गया । भारत सरकार ने 1994 में योजना आयोग के माध्यम से नगरी अपशिष्ट प्रबंधन हेतु उच्च स्तरीय समिति गठित की थी किन्तु ग्रामीण क्षेत्र के लिए कुछ नहीं किया ।

### 8.4.11 कृषि विकास की समस्या

भारत के ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय कृषि है । कृषि पर भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग जीवकोपार्जन हेतु निर्भर है। भारत कृषि प्रधान होते हुए भी यहां कृषि की दशा बहुत सोचनीय और पिछड़ी हुई है । भारत सरकार के पूर्व कृषि सलाहकार डी. क्लाउस्टन (Dr. Caluston) ने ठीक ही कहा था 'भारत में हमारी पिछड़ी हुई जातियां तो हैं ही पर पिछड़े हुए धंधे भी हैं और दुर्भाग्यवश कृषि उनमें से एक है' । स्वतंत्रता के बाद देश में हरित क्रांति के फलस्वरूप प्रति हेक्टेयर कृषि उपज में वृद्धि हुई है किन्तु विकसित और अन्य देशों की अपेक्षा प्रति हेक्टेयर यह उपज काफी कम है । भारत में कृषि के पिछड़ेपन के कई कारण हैं । इनमें प्रमुख तौर पर प्राकृतिक कारण, भूमि पर जनसंख्या का अत्याधिक दबाव, परम्परागत कृषि पद्धति, कृषि की अकुशल पद्धति, अत्यधिक छोटे और बिखरे हुए खेत, भूस्वामित्व की समस्या, उन्नत बीजों का कम प्रयोग, खाद की कमी, दुर्बल पशु, सिंचाई के साधनों का अभाव, ऋण सुविधाओं की अपर्याप्तता, निरक्षरता और भाग्यवादिता आदि प्रमुख है । इन कारणों के अलावा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुछ एसी विशेषताएं निहित है जिनके कारण कृषकों को उनकी पैदावार का उचित लाभ नहीं मिलता । उदाहरण के तौर पर कृषि विपणन की समस्या, मुकदमें बाजी और व्यापारिक फसलों की जगह परम्परागत फसलों को बोना आदि ऐसी समस्याएं हैं ।

भारत में कृषकों के समक्ष कृषि विपणन की समस्या कम जटिल नहीं है । यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात और संचार के साधनों में सुधार हुआ है लेकिन कई कारणों से कृषक को अपनी उपज अपने गांव के आसपास के बाजारों में महाजनों को बेचना पड़ता है । भारत में कृषि विपणन की जो व्यवस्था है उनमें मंडियों का अव्यवस्थिति होना मुख्य है । सहकारी क्रय-विक्रय समितियां इतनी सक्षम नहीं है कि वे हर प्रकार की उपज का विपण न कर सकें । कृषि विपणन में जो दोष हैं उनमें कृषि उपज की घटिया किस्म, संगठन का अभाव, परिवहन एवं यातायात के साधनों का अभाव, अपर्याप्त एवं अवैज्ञानिक भंडार की व्यवस्था, श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण का अभाव, कृषकों में मूल्य संबंधी ज्ञान का अभाव, दलालों, बनियों और कच्चे आडतियों की भरमार आदि ऐसे अनेक कारण हैं ।

नवमी पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत वार्षिक रखा गया और समग्र कृषि उत्पादन का लक्ष्य 234 मिलि. टन खाद्यान्न उत्पादन का रखा गया है। इस उद्देश्य से नई कृषि नीति के अंतर्गत भूमि, जल और आनुवांशिक संसाधनों को अधिकतम उपयोग पर जोर दिया गया । इसी के साथ भूमि की पट्टेदारी, चकबन्दी और 80 मिलिटन हेक्टे. सीमान्त एवं बजर भूमि सहित सामुदायिक भूमि का एग्रो फोरेस्ट्री हेतु उपयोग पर ध्यान दिए जाने की जरूरत बतलाई गई । नवमी पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्य निम्नवत रखे गए हैं -

**कृषि सामग्री केआर उत्पादन लक्ष्य(2011-02)**

| क्रं | फसल | उत्पादन (मिली. टन) | वार्षिक संयुक्त वृद्धि दर (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|
| 1. | चावल | 99.0 | 4.02 |
| 2. | गेहूं | 83.0 | 3.68 |
| 3. | पतले अनाज | 35.5 | 0.70 |
| 4. | दालें | 16.5 | 2.67 |
| 5. | कुल खद्यान्न | 234.0 | 3.26 |
| 6. | तिलहन | 30.0 | 3.75 |
| 7. | कपास (लाख गाँठें) | 157.0 | 4.00 |
| 8. | गन्ना | 336.0 | 3.91 |

स्रोत - नाईन्थ फाईव ईयर प्लान 1997-2002 पृ. 45 मै

भारत खाद्यान्न फसलों, तिलहन, कपास, गन्ना, बागवानी, रेशमकीट पालन, दुग्ध विकास, मुर्गीपालन, कृषि वानिकी, एक्वाकल्चर आदि के क्षेत्र में सतत् विकास की ओर अग्रसर है । इसके अलावा चाय, काफी, रबर, मसाले, तम्बाकू एवं काजू आदि के अलावा बागवानी पर भी जोर दिया गया है । कुल मिलाकर सतत् कृषि (Surtainable Agriculture) की हिमायत की गई ।

भारत में जनसंख्या का स्पष्ट प्रभाव भूमि पर बढ़ते जनसंख्या दबाव के रूप में परिलक्षित हो रहा है । विगत दशकों में जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति वनभूमि एवं कृषि भूमि की उपलब्धता का विवरण निम्न तालिका में देखा जा सकता है ।

**प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता**

| वर्ष | वनभूमि प्रति व्यक्ति (हेक्ट.) | ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि (हेक्ट.) |
|---|---|---|
| 1950-51 | 0.113 | 0.638 |
| 1960-61 | 0.124 | 0.503 |
| 1970-71 | 0.127 | 0.455 |
| 1982-83 | 0.095 | 0.343 |
| 1991-92 | 0.078 | 0.302 |
| 1995-96 | 0.074 | 0.291 |

स्रोत - सिलेक्टेड सोशियो - इकानामिक स्टेटिसटिक्स इंडिया, 1999, पृ. 41

कृषि क्षेत्र में भारत की श्रम शक्ति का 65 प्रतिशत संलग्न है । सकल घरेलू उत्पाद 27 प्रतिशत इसी क्षेत्र में मिलता है। देश की कुल निर्यात में कृषि का योगदान लगभग 218 प्रतिशत है । दुनिया में सर्वाधिक क्षेत्र में दलहन की खेती करने वाला देश भारत की है । कपास के क्षेत्र में इसकी संकर किस्म विकसित करने वाला पहला देश है ।

### 8.4.12 पर्यावरणीय समस्याएं

ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरणीय समस्याओं का प्रकोप भी कम नहीं है । बाढ, सूखा, भूकंप, तूफान, भूस्खलन और अकाल की स्थितियों से ग्रामीण जनजीवन काफी प्रभावित होता है । बीसवीं सदी में बंगाल के अकाल को छोड़कर कोई भीषण अकाल देश में नहीं पड़ा लेकिन बाढ़ और सूखे की स्थितियां देश के विभिन्न प्रदेशों में प्राय: निर्मित होती रहती है । उत्तरप्रदेश, बिहार, असम, पश्चिमी बंगाल आदि प्रदेशों में प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ों से जन-धन की बड़ी हानी होती है । बाढ़ नियंत्रण तथा राज्यों द्वारा प्रस्तावित योजनाओं पर विचार करने हेतु 1954 केन्द्रीय बाढ़ नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गई थी । इसी तरह गंगा, ब्रह्मपुत्र, उत्तर पश्चिमी भारत की नदियों और मध्य भारत की नदियों के लिए चार नदी आयोग भी गठित किए गए थे । बाढ़ नियंत्रण हेतु प्रथम योजना से नवी योजना तक करोड़ों की राशि का बजट में प्रावधान किया गया लेकिन अभी भी देश में बाढ़ की स्थिति पर पूरी तरह नियंत्रण नहीं है । देश के किसी न किसी भाग में बाढ़ के अलावा सूखे और अमला की स्थितियाँ भी बनी रहती हैं। इसी तरह भूकम्प, तूफान और भू स्खलन से भी कई क्षेत्र पीड़ित होते हैं ।

### 8.4.13 ग्रामीण उद्योगों की समस्याएं

भारत में ग्रामीण समुदाय आत्मनिर्भर समुदाय समझे जाते थे क्योंकि ग्रामीण उद्योगों में लगे कारीगर और दस्तकार इतने अकुशल होते थे कि वे बढ़िया उत्पादन कर सकते थे । किन्तु ब्रिटिश शासन काल में ग्रामीण उद्योग धंधों का तेजी से पतन हुआ क्योंकि अंग्रेज अपने देश में बने माल को भारत में खपाना चाहते था । उन्हें भारत के कुटीर उद्योगों को नष्ट करना आवश्यक था । इसके अलावा देशी राजाओं और रियासतों के पतन से इन उद्योगों को जो प्रोत्साहन मिलता था वह भी समाप्त हो गया । जनसंख्या में वृद्धि के कारण खेती पर दबाव बढ़ने लगा और ग्रामीण दस्तकार बेरोजगार होकर मरने लगे । वे नगरों की ओर पलायन कर गए ।

ग्रामीण उद्योगों के विकास में जो कठिनाइयां और समस्याएं व्यास हैं उन्हें निम्नवत समझा जा सकता है ।

- ग्रामीण दस्तकारों के लिए अपने उद्योगों के विकास हेतु आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो पाता है । जिससे वे अपने कौशल और समय का पूरा उपयोग नहीं कर पाते हैं।
- ग्रामीण दस्तकार प्राय: निर्धन होते हैं और उनके पास इतनी पूंजी नहीं होती है कि वे अपने उद्योग को सफलता पूर्वक चला सकें । फलत: उन्हें ऊँची ब्याज दरों पर महाजनों से कर्ज लेना पड़ता है । इसका प्रभाव उनके उद्योग पर भी पड़ता है ।
- ग्रामीण दस्तकारों में प्रशिक्षण का अभाव भी पाया गया । अत: वे आज भी परम्परागत ढंग से अपने माल का उत्पादन करते हैं जिससे ग्रामीण उद्योगों द्वारा निर्मित माल ग्राहक को गुणवत्ता की दृष्टि से संतुष्ट नहीं करता है। इस हेतु सरकार द्वारा ट्राइसेम योजना चलाई गई है ।

- ग्रामीण दस्तकारों में संगठन न होने के कारण उनका शोषण होता है । संगठन के अभाव में वे मोल-भाव नहीं कर पाते ।
- ग्रामीण दस्तकार छोटे पैमाने पर अपने सामान का उत्पादन करते हैं और बेचते हैं । इससे उन्हें ज्यादा लाभ नहीं होता है । इसी तरह वे थोड़ी मात्रा में कच्चा माल खरीदते हैं तो तुलनात्मक रूप से महंगा पड़ता है ।
- ग्रामीण दस्तकारों द्वारा बनी हुई वस्तुएं और सामान को बेचने के लिए कोई अच्छी विपणन व्यवस्था भी नहीं है । जो लोग उनका सामान खरीदते हैं वे उससे अच्छा मुनाफा कमाते हैं ।
- भारतीय लोगों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति ज्यादा रुचि और विश्वास नहीं है । ग्रामीण उद्योगों से निर्मित माल की मांग कम होती है जिससे ये उद्योग ठीक से पनप नहीं पाते हैं ।

ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को दो खण्डों - आधुनिक एवं परम्परागत में बाँटा गया है । आधुनिक खण्ड के अन्तर्गत लघु उद्योग तथा परम्परागत क्षेत्र में हैंडलूम, सेरिकल्चर, खादी एवं ग्रामीण उद्योग, कॉयर उद्योग हैंड क्राफ्ट्स और ऊन विकास (असंगठित क्षेत्र) को सम्मिलित किया है । इन दोनों खण्डों के अंतर्गत उद्योगों के विकास हेतु जो लक्ष्य नवमीं योजना में रखे गए उनके उत्पादन, रोजगार और निर्यात सम्बन्धी तथ्य संलग्र तालिका में दिए गए हैं ।

**ग्रामीण एवं लघु उद्योग**

| क्रं | उद्योग/उपक्षेत्र | इकाई | उत्पादन | | रोजगार | | निर्यात | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | 1996 | 2001-2 | 1996-97 | 2001-2 | 1996-97 | 2001-2 |
| 1. | लघु उद्योग | रु.करोड़ | 412636 | 725000 | 160 | 185 | 39249 | 78900 |
| 2. | खड़ी वस्त्र | मिली.वर्ग मी. | 125 | 230 | 12 | 18 | - | - |
| 3. | ग्राम उद्योग | रु.करोड़ | 4120 | 7260 | 48.17 | 65 | - | - |
| 4. | कोयर रेशा उद्योग | हजार टन | 271 | 350 | 5.5 | 6 | 208 | 400 |
| 5. | हथकरधा वस्त्र | मिली.वर्ग मी. | 7235 | 8800 | 124.0 | 173 | 1622 | 3170 |
| 6. | पावर लूम | | 19352 | 32000 | 70.79 | 80 | 400.89 | 9000 |
| 7. | कच्चा रेशम | मीट्रिक टन | 14126 | 20540 | 59.61 | 74 | 880.0 | 1520 |
| 8. | हस्त शिल्प | रु.करोड़ | 29600 | 47000 | 70.82 | 90 | 5628.62 | 9000 |
| 9. | कच्चा ऊन | मीट्रिक टन | 44 | 56 | - | 6 | - | - |

स्रोत- नाईन्ध फाईव ईयर प्लान, 1997-2002, वान्यूम II पृ. 665

### 8.4.14 ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी एक अन्य समस्या है । जो ग्रामीणी विकास में बाधक है । बेरोगारी उस दशा का नाम है जिसमें कार्य करने योग्य व्यक्ति को कार्य की इच्छा रखते हुए भी कार्य नहीं मिलता है । कार्ल पिब्राम ने एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज (Vol. XV) में बेरोजगारी को परिभाषित करते हुए लिखा है - ' बेरोजगारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम शक्ति की पूर्ति काम करने के स्थानों की संख्या में अधिक होती है । बेरोगजारी का सामाजिक संरचना का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ' ।

बेरोजगारी के कई प्रकार हैं जिनमें मौसमी, चक्रीय, संरचनात्मक, साधारण आदि मुख्य हैं । ग्रामीण बेरोजगारी के कारणों में जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर, सीमित भूमि, कृषि की मौसमी प्रकृति, सहायक उद्योगों का अभाव, कृषि का मानसून पर आधारित होना, अवैज्ञानिक एवं परम्परागत कृषि पद्धति, भूमि जोतों का छोटा और बिखरा होना आदि मुख्य हैं । डी. राधामुकुन्द मुकर्जी का अनुमान था कि उत्तरी भारत में कृषकों को वर्ष में 200 दिन से ज्यादा बेरोजगार रहना पड़ता है । इसी तरह शाही कृषि आयोग (Royal Commission on Agriculture) को अनुमान था कि वर्ष के कम से कम चार माह तक भारत में कृषक बेरोजगार रहते हैं ।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी किसी समूह विशेष तक ही सीमित नहीं है । यहां बेरोजगारी अनेक प्रकार से व्याप्त है । किन्तु मौसमी बेरोजगारी विशेष रूप से विचारणीय है । इसका कारण यह है कि कृषक एवं कृषि श्रमिक फसल कटने के बाद विशेष रूप से बेरोजगार हो जाते हैं । ग्रामीण बेरोजगारी से जुड़े कुछ तथ्य निम्नवत हैं -

1. ग्रामीण बेरोजगारी एक ओर व्यापक है तो दूसरी ओर असमान रूप से फैली हुई है । यह असमानता ही क्षेत्र में विभिन्न जातियों के बीच तो विद्यमान है ही, साथ ही एक ही प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में भी असमान रूप से व्यास है । कृषि श्रमिकों का अन्तरक्षेत्रीय एवं अन्तराज्यीय रोजगार हेतु मौसमी स्थानांतरण से इसकी गंभीरता का अनुमान सहज रूप से लागाया जा सकता है । प्राय: निर्धन क्षेत्रों के श्रमिक रोजी रोटी की तलाश में अन्य प्रदेशों एवं क्षेत्रों में जाते हैं ।
2. कुछ उच्च जातियसों को छोड़कर प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य सभी जातियों की महिलाओं एवं बच्चों को कृषि कार्य एवं मजदूरी आदि में हाथ बंटाना पड़ता है । किन्तु इन्हें पूर्ण रोजगार नहीं मिलता है । अत: महिला एवं बाल श्रमिक अल्प रोजगार की समस्या से सदैव पीड़ित रहते हैं ।
3. गांव में आर्थिक विषमता इतनी ज्यादा है कि तथा-कथित बहुसंख्यक खुद कास्तकार भी अपनी अनार्थिक जोतों से इतना उत्पादन नहीं कर पाते है कि वर्ष भर वे अपने परिवार का भरण-पोषण भी ठीक तरह से कर सकें।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लोग बेरोजगारी की समस्या में सर्वाधिक पीड़ित रहते है। अत: ग्रामीण भूस्वामी वर्ग इनका भरपूर आर्थिक शोषण करता है । इनके पास न तो पर्याप्त भूमि है और न पश्तैनी अच्छे व्यवसाय ही । आज भी

सामाजिक-आर्थिक निर्योग्यताओ ने इन्हें श्रमिकों की परिस्थिति के ऊपर उठने के ज्यादा अवसर नहीं दिए हैं ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के सामाजिक- आर्थिक विकास में योगदान देते हुए सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र ने रोजगार के नए अवसर पैदा किए । लेकिन ग्रामीणों को इसका लाभ निरक्षरता एवं अकुशलता आदि के कारण नहीं मिला । 19 वें राष्ट्रीय सर्वेक्षण पर आधारित बेरोजगारी पर गठित 'भगवती कमेटी' 1973 ने अनुमान लगाया था कि 90 लाख बेरोजगार हैं और 97लाख लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों में सप्ताह में 14 घण्टे से भी कम काम मिलता है । इसी तरह राज कृष्ण ने 1977 में ग्रामीण बेरोजगारी के बारे में अनुमान लगाया था कि 1.83 करोड़ लोग बेरोजगार हैं और 1.79 करोड़ लोग अल्प रोजगार शुदा हैं । 27 वें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 4० लाख लोग भयंकर रूप से बेरोजगारी से पीड़ित थे ।

ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के उद्देश्य से कई कार्यक्रम एवं आय उत्पादक योजनाए चलाई जा रही हैं । फिर भी ग्रामीण बेरोजगारी पूरी तरह उन्मूलित नहीं हुई है । ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए कृषि व्यवस्था का आधुनिकीकरण, सिंचाई के साधनों का समुचित विकास, बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना, कुटीर उद्योगों का विकास, सार्वजनिक निर्माण कार्यो को बढ़ावा और पूरक आय और रोजगारों को ठोस योजनाओं को ग्रामीण क्षेत्रों मे क्रियान्वित किया जाना चाहिए ।

### 8.4.15 जनसंचार और सम्प्रेषण की समस्याएं

भारत में जनसंचार और सम्प्रेषण की समस्या बहुत व्यापक है । जिसकी वजह से ये माध्यम ग्रामीण विकास में अपेक्षाकृत प्रभावशाली भूमिका नही निभा पाते हैं । किन्तु संचार साधनों की कमियों को दूर किया जा सकता है । इस संदर्भ में संयुक्त-राष्ट्र द्वारा प्रकाशित मैक ब्राइट आयोग की रिपोर्ट का यह अंश उल्लेखनीय है । रिपोर्ट में कहा गया है कि 'सूचनाओं का प्रसार इस ढंग से किया जाए कि व्यक्ति जटिल सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी एवं राजनैतिक परिस्थितियों से घिरे संसार को समझ सके और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सके । इसी तरह सामाजीकरण की प्रक्रिया में जनसंचार साधनों की भूमिका बड़ी प्रभावी हो सकती है । सामुदायिक जीवन में प्रत्येक समाज के तात्कालिक एवं अंतिम लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरण वाहक का कार्य इन साधनों के समुचित उपयोग से संभव है । इसके अलावा जनमत संग्रह एवं जन मुद्दों पर वाद-विवाद, शिक्षा, सांस्कृतिक उन्नयन, मनोरंजन एवं एकीकरण आदि के क्षेत्र में संचार माध्यमों की भूमिका बड़ी प्रभावकारी हो सकती है । ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंचार माध्यमों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है ।

### 8.4.16 प्रशासनिक असंवेदनशीलता

ग्रामीण विकास कार्य का सम्बन्ध मानवीय समूहों से है । स्वाभाविक है कि इस कार्यक्रम की सफलता एवं विफलता कुछ महत्वपूर्ण मानवीय कारकों पर आधारित है । मानवीय कारक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक हो सकते हैं । संचार सम्बन्धी मानवीय कारक

भी महत्वपूर्ण हैं । प्रमुख रूप से मानवीय कारक को हम जिन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं उन्हें सामाजिक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, संचार सम्बन्धी कारक एवं सांस्कृतिक कारक कह सकते हैं । डी. दुबे ने उन मानवीय कारकों की ओर विशेष रूप से संकेत किया है जो ग्रामीण विकास कार्यक्रम के स्वीकार किए जाने में अत्यधिक बाधक हैं । वे निम्न हैं -

1. ग्रामीण जनसंख्या के अधिकांश भाग की सामान्य विमुखता ।
2. अधिकारियों एवं अन्य बाहरी व्यक्तियों के प्रति संदेह एवं अविश्वास ।
3. संचार के साधनों की विफलता ।
4. परम्परागत सांस्कृतिक कारक ।

ग्रामीण विकास योजना किसी भी समुदाय के सामाजिक ढ़ाँचे पर आधारित होती है । भारत में ग्रामीण सामाजिक ढाँचा जाति प्रथा पर अत्यधिक आधारित है । जाती प्रथा एक ऐसा सामाजिक कारक है जो लोगों को नवीन कार्यक्रमों के अपनाने में बाधक होता है । कोई भी कार्यक्रम विकसित नहीं हो सकता यदि यह सामाजिक ढाँचे के विषय में विचार नहीं करता । राउप ने लिखा है - 'यदि कोई मानव जीवन को सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समझने की इच्छा करता है तो सर्वप्रथम उसको यह स्वीकार करना होता है कि समाज एवं संस्कृतियाँ उनके स्वयं अधिकार में वास्तविकताएँ हैं । जो कुछ भी विकास वहाँ हो सकता है, वह प्रत्येक समुदाय के जीवन के प्रतिमान के अंदर का विकास है'

ग्रामीण विकास के कार्यक्रम को सामाजिक कारकों पर विशेष ध्यान देना पड़ेगा । सामुदायिक विकास को एक व्यवस्थित एवं पूर्ण कार्यक्रम के रूप में समुदाय को परिवर्तित करना होगा । इस दृष्टि से चीवा (Chiva) ने लिखा - ' ग्रामीण जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों को परस्पर निर्भरता की दृष्टि और समुदाय का चरित्र एक मजबूती से संगठित सामाजिक इकाई की तरह, रूप से विशेष से परम्परा के साथ सभ्याओं में यह स्पष्ट है कि कोई भी हस्तक्षेप पूर्णरूप से ग्रहणीय होना चाहिए । ये हस्तक्षेप मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक, प्राविधिक, आर्थिक अथवा प्रशासकीय होना चाहिए' । भारतीय सामाजिक संरचना से जुड़ी अनेक सामाजिक समस्याएं हैं जिनमें जातिगत ऊँच-नीच, अस्पृश्यता, जातिवाद, बालविवाह, मृत्युभोज, दहेज, विधवा पुनर्विवाह निषेध आदि मुख्य हैं ।

## 8.5 सारांश

*उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय ग्रामों में जो बहुसंख्यक आबादी बसी हुई है उसकी अनेकानेक समस्याएं है। स्वतंत्रता के बाद देश के समक्ष सामान्य तौर और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की जो समस्याएं थीं उनमें घोर गरीबी व्यापक निरक्षरता, बीमारी, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि आदि के अलावा कई सामाजिक समस्याएं व्याप्त थीं | अस्पृश्यता जातिवाद, ऊँचनीच की भावना, महिलाओं और अन्य कमजोर वर्गों की निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति आदि समस्याएं भी व्यापक रूप से आज भी विद्यमान है । वस्तुत: एक अर्थ में ग्रामीण जीवन का पूरा परिवेश ही समस्या ग्रस्त था ।*

*किन्तु देश की स्वतंत्रता के बाद योजनाकारों ने ग्रामीण विकास की ओर ध्यान दिया फलत: अनेक कार्यक्रम और योजनाएं ग्रामीण विकास हेतु संचालित की गई जिनका प्रभाव ग्रामीण लोगों के जीवन पर सकारात्मक रूप से पड़ा । यह बात अलग है कि प्रारंभ में पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि और आर्थिक विकास पर ज्यादा जोर दिया गया किन्तु बाद में शिक्षा, पोषण, पेयजल एवं सफाई आवास रोजगार और अवसंरचनात्मक विकास पर भी ध्यान दिया गया । ग्रामों को सड़कों से जोड़ा गया पेयजल एवं विद्युत आपूर्ति, शिक्षा साक्षरता का प्रसार, चिकित्सा और टीकाकरण की सुविधाओं एवं सेवाओं का विस्तार किया गया अब ग्रामीण लोगों के जीवन में परम्परावादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण के स्थान पर आशावादी दृष्टिकोणों का विकास हो रहा है । ग्रामीण लोगों की निर्धनताउन्मूलन हेतु उन्हें कृषि और ग्रामीण उद्योगों के नियोजित विकास की ओर प्रेरित किया जा रहा है । इस सब के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की कई समस्याएं बनीहुई हैं जिन्हें उन्यूलित करना राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से अपरिहार्य है ।*

## 8.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें


1. देसाई, ए. आर. : रूरल सोशियालाजी इन इंडिया, पापुलर प्रकाशन, मुम्बई, 1978
2. तोमर, रामबिहारी सिंह: ग्रामीण समाजशास्त्र
3. दाहमा, ओ पी. एवं सिंह: राम गोपाल: ग्रामीण समाजशास्त्र म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. गुप्त, रघुराज एवं मुंशी एस. एन. : ग्रामीण समाजशास्त्र भारतीय परिवेश में, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली, 1984
5. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ एवं अग्रवाल, भारत: सामाजिक व्याधिकीय एवं समस्याएं, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली,
6. मदन, जी. आर.. इण्डियास डिव्हलपिंग विलेजेज
7. सिंह, सुरेन्द्र एवं अन्य :भारत में सामाजिक नीति नियोजन और विकास, समाजकार्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
8. दुबे, एस. सी: इण्डियास चैंजिंग विलेजेज, 1958
9. Chiva, I : Rural Communities : Problems Methods and types of Research, UNESCO, Paris, 1950 p.30


## 8.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय ग्रामीण जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
2. ग्रामीण विकास से क्या तात्पर्य है? ग्रामीण विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों की विवेचना कीजिए।
3. ग्रामीण विकास की विभिन्न समस्याओं को विस्तार से समझाए?
4. ग्रामीण विकास की सामाजिक समस्याएं क्या हैं, इनका विस्तार से विवेचन कीजिए ।
5. ग्रामीण विकास की आर्थिक समस्याएं क्या हैं, इनका विस्तार से विवेचन कीजिए ।

# इकाई 9 ग्रामीण विकास की समस्याएं - 2 (ग्रामीण विकाल हेतु कुशल प्रशिक्षण नीति जरूरी)

**इकाई की रूपरेखा**


9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 न्यूनतम आवश्यकताएं

- 9.3.1 प्राथमिक स्वास्थ्य उपचर्या
- 9.3.2 प्राथमिक शिक्षा
- 9.3.3 सुरक्षित पेयजल
- 9.3.4 पानी की गुणवत्ता
- 9.3.5 गरीब परिवारों को आवास
- 9.3.6 पोषाहार
- 9.3.7 गाँव एवं बस्तियों को आपस में सड़को द्वारा जोड़ना
- 9.3.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं खाद्य सुरक्षा

9.4 भूमि संसाधन का संरक्षण एवं बटवारा

- 9.4.1 भूमि सुधार
- 9.4.2 जोत की भूमि की उच्चतम सीमा

9.5 ग्रामीण बेरोजगारी एवं गरीबी

9.6 पंचायती राज

- 9.6.1 कार्य एवं शक्तियों का बटवारा
- 9.6.2 वित्तीय साधन
- 9.6.3 नियत्रंण प्रक्रिया
- 9.6.4 जिला नियोजन समिति
- 9.6.5 पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम 1996

9.7 ग्रामीण विकास के लिए कुशल प्रशिक्षण नीति की आवश्यकता

- 9.7.1 प्रशिक्षण क्यों?
- 9.7.2 प्रशिक्षण बार-बार दोहराए
- 9.7.3 शिक्षण- प्रशिक्षण की व्यवस्था
- 9.7.4 प्रशिक्षण के महत्व को स्वीकार किया

9.8 सारांश

9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.10 निबंधमात्मक प्रश्न

## 9.1 उद्देश्य

भारत गांवों में बसता है । यह कहावत आज भी उतनी ही सही है जितनी देश की आजादी के समय थी । अत: इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि यह कहें कि भारत के विकास की समस्या मूलत: ग्रामीण विकास की समस्या है । आप यह पाठ्यक्रम सम्पूर्ण करने के उपरान्त, पत्रकारिता के क्षेत्र में हो या किसी अन्य क्षेत्र में कार्य कर रहे हो आपके लिए ग्रामीण विकास समस्याओं की जानकारी, उनको दूर करने के लिए सरकार क्या कर रही है, इन समस्याओं के लिए विभिन्न कार्यक्रमों की करने में क्या- क्या कठिनाइयां सामने आ रही हैं और इन कठिनाईयों या रुकावटों को कैसे दूर किया जा सकता है, इन सभी का ज्ञान होना आवश्यक है । अगर आप अखबार देखेंगे तो पाएंगे की गाँव की समस्याओं संबंधी बहुत कम समाचार लेख एवं विश्लेषण मिलेंगे । इसका एक कारण यह भी है की पत्रकार अधिकतर नगरीय परिवेश मैं होते हैं । इसके इलावा अपने कार्य के दौरान भी उनको ग्रामीण परिवेश के बारे में भी नहीं बताया जाता है । इसलिए पत्रकार को गाँव की समस्याओं की जानकारी होना जरूरी है । प्रस्तुत इकाई में ग्रामीण विकास की समस्याओं पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है ।

## 9.2 प्रस्तावना

पत्रकारिता के क्षेत्र में अगर कहे कि पत्रकार 'जैक ऑफ आल ट्रैंड' होता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि पत्रकार चाहे किसी समाचारपत्र या पत्रिका में कार्यरत हो या जनसंचार से जुड़े अन्य किसी कार्य में हों, उसे सभी विषयों का ज्ञान होना जरूरी हैं । ऐसे होने पर वह अपना कार्य अच्छी तरह से निर्वाह सकता है । इसलिए उसे अन्य विषयों की तरह ग्रामीण विकास की क्या-क्या समस्याएं हैं, उनका ज्ञान होना भी आवश्यक है । ग्रामीण विकास की समस्याएं अनेक हैं । स्वतंत्रता प्राधि के बाद 54 वर्ष बीत चुके है, लेकिन आज भी ग्रामीणों की बुनियादी न्यूनतम सेवाएं अर्थात् प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं, प्राथमिक शिक्षा, सुरक्षित पेयजल, ग्रामीण सड़क संपर्क और आवास की उपलब्धता की पहुंच नहीं है। अत: इस समय इन बुनियादी न्यूनतम सेवाओं की आज के समय क्या स्थिति है, इसका ज्ञान होना आवश्यक है ।

दूसरा मसला बेरोजगारी व गरीबी का है । देश के आजाद होने से अब तक सरकार ने बेरोजगारी को दूर करने एवं गरीबी को कम करने के अनेक स्वत: रोजगार व मजदूरी रोजगार कार्यक्रम लागू किए । जिनके प्रभाव से ये समस्याएं कम तो हुई हैं लेकिन जनसंख्या की बढ़ोतरी के कारण यह समस्या वहीं की वहीं है, जहां पर आज से 20 या 25 वर्ष पहले थी । इस समय, जो उदारीकरण व भूमंडलीकरण का दौर चल रहा है, इसमें यह समस्या और भी गंभीर हो गई है कि कैसे इनसे पार पाए। जल, जगल व जमीन व अन्य प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन की भी समस्या है । वास्तव में इन संसाधनों का कुप्रबधन ही आर्थिक संवद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए विशेष रूप से गरीबी और पिछड़ेपन की समस्याओं के लिए जिम्मेदार है । भूमि, गाँव की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण संसाधन है लेकिन समस्या यह है कि यह कुछ ही लोगों के हाथों में है ।

वैसे देश में सार्वजनिक वितरण प्राणाली के अंतर्गत 4 लाख से भी अधिक उचित मूल्य की दुकानों का जाल है । इसके बावजूद देश की आबादी के एक बड़े हिस्से को उचित दर पर आवश्यक सामग्री नहीं मिल पाती । पिछले दिनों आपने सुना होगा की भुखमरी के कारण अनेक लोग अपनी जान गंवा बैठे हैं जबकि सरकार के गोदामों में अन्न के भडार हैं । 73 वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को नया जीवन प्रदान किया गया है लेकिन उनके पिछले 7 वर्षों के अनुभव बताते हैं कि पंचायतों को वांछित अधिकार व शक्तियां प्रदान नहीं की गई हैं । संविधान की 11 वीं अनुसूची में कृषि से लेकर संपत्तियों के रखरखाव के कार्य पचायतों को हस्तांतरित करने की बात की है लेकिन सही मायनों में वे अब भी राज्य सरकार के ही अधिकार क्षेत्र में है। अधिकतर राज्यों में पंचायतों को सुपरविजन, निगरानी व देखभाल आदि संबंधी कार्य ही हस्तांतरित किए हैं । जिनके कारण पंचायतें स्वायत्त शासन की संस्थाए उभरकर नहीं आई हैं । उनके लिए सही मायनों में यह कहावत चरितार्थ होती है कि ' घर बार सब तुम्हारा, लेकिन कोठी कुठले के हाथ न लगाना । ' आइए उपरोक्त सभी समस्याओं का अध्ययन एक-एक करके विस्तार से करते हैं ।

## 9.3 बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताएं

चीजे जितनी बदलती हैं फिर भी पहले जैसी ही नजर आती हैं । यह गांव के विकास के बारे में सही साबित होती है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि पिछले 55 वर्षों में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में काफी कुछ किया गया है । अनेक क्षेत्रों में विकास एवं सुधार हुआ है लेकिन फिर भी कुछ करना बाकी है और तो और ग्रामीणों को गांवों में बुनियादी न्यूनतम सेवाएं भी उपलब्ध नहीं है । इसी तथ्य को ध्यान में रखकर वर्ष 1996 में लोगों को बुनियादी न्यूनतम सेवाओं की उपलब्धता की स्थिति की समीक्षा करने के लिए मुख्य मंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था । सम्मेलन में प्राथमिक रूप से ध्यान दिए जाने वाले सात बुनियादी न्यूनतम सेवाएं निर्धारित की थी । जो निम्न प्रकार हैं-

- प्राथमिक स्वास्थ्य उपचर्या
- प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण
- सुरक्षित पेयजल
- सभी आवासहीन गरीब परिवारों को आवास
- पोषाहार
- गाँव व गलियों को आपस में सड़कों द्वारा जोड़ना
- गरीबों की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू बनाना।

आइए इन बुनियादी आवश्यकताओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं ।

### 9.3.1 प्राथमिक स्वास्थ्य उपचर्चा

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000) के अनुसार स्वास्थ्य का आधारभूत ढांचा पर्याप्त नहीं है जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है । वर्ष 2002 की अनुमानित जनसंख्या के लिए अनुमानत: 23, 190 उपकेन्द्रो की आवश्यकता है । एक उपकेन्द्र के लिए 0.5 लाख रुपए की आवर्ति

लागत एवं 3 लाख पूंजीगत लागत की जरूरत है । प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी जो 1991 में 1531 थी 2002 में अनुमानित जनसंख्या के लिए 4212 प्राथमिकता स्वास्थ्य केन्द्रों की आवश्यकता का अनुमान लगाया है । एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की पूजीगत लागत 24.50 लाख रुपए तथा 13 लाख रुपए की आवर्ती देयता है । सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी जो 1991 में 2899 थी उनका वर्ष 2000 की अनुमानित जनसंख्या के लिए 3776 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की आवश्यकता का अनुमान है । ये केन्द्र अधिकांशत: प्रथम 'रेफरल यूनिट' के रूप में कार्य करते हैं और परिवार नियोजन सेवाओं के लिए आपरेशन थियेटरों के रूप में सेवाएं प्रदान करने के अतिरिक्त ये मातृ मृत्युदर और शिशु मृत्यु दर में कमी लाने के लिए महत्वपूर्ण है । एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र की पूंजीगत लागत 80.50 लाख रूपए और आवर्ती लागत 27 लाख रुपए हैं ।

आधारभूत ढांचे के अलावा प्रशिक्षित जनशक्ति में अपर्याप्ता की भी समस्या है । उदाहरण के लिए 27501 सहायक नर्स 64860 पुरुष बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ताओं, 4224 'हेल्थ विजिटरों' 5126 स्वास्थ्य सहायकों ( पुरुष) तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में 2475 चिकित्सा अधिकारियों, 1429 सर्जनों, 1446 सी रोग विशेषज्ञों, 1525 फिजीशियनों, 1774 बाल चिकित्सकों अर्थात् 6635 सभी विशेषज्ञों की कमी होने का अनुमान लगाया गया है । अन्य स्वास्थ्य जनशक्ति की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है । उदाहरण के लिए ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्चा प्रदाय प्रणाली में 1171 रेडियोग्राफरो, 6045 फार्मासिस्टों, 12793 प्रयोगशाला तकनीशियनों और 18,851 नर्स मिडवाइफों की कमी है । जनसंख्या नीति के अनुसार प्रशिक्षण जनशक्ति व अन्य कमी को पूरा करने के लिए लगभग 2300 करोड़ रुपए की आवश्यकता होती है ।

### 9.3.2 प्राथमिक शिक्षा

बच्चों की अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं । स्कूलों, अध्यापकों व विद्यार्थी सभी की संख्या में वृद्धि हुई है । उदाहरण के लिए स्कूलों की संख्या जो 1990-91 में 2,3100 थी 1998-99 में बढ़कर 9,30,000 हो गई है । जहाँ तक स्कूल पहुंच का सवाल है, 826 लाख बस्तियों में रहने वाली 94 प्रतिशत ग्रामीण आबादी के लिए एक कि. मी. की पैदल दूरी के भीतर स्कूल है । इतना होते हुए भी 6-14 वर्ष के बीच जो 2 मिलियन बच्चों में से 59 मिलियन बच्चे स्कूल ही नहीं जा पाते । इनमें से 35 मिलियन लड़कियां हैं एवं 24 मिलियन लड़के हैं । यही नहीं स्कूल छोड़ने, पढ़ने व निम्न स्तर, लड़कियों जनजाति एवं वांछित वर्ग का निम्न भागीदारी है । इतनी सुविधाओं के होते हुए कम से कम 1 लाख बसावटों में एक कि. मी. के भीतर स्कूल की सुविधा नहीं है । इसके अतिरिक्त अपर्याप्त संरचना, स्कूलों का अकुशल कार्य, अध्यापकों का गैर हाजिर रहना, बहुत संख्या में जगहों का खाली पड़ा रहना एवं पैसे की कमी से भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा ग्रसित है ।

### 9.3.3 सुरक्षित पेयजल

सुरक्षित पेयजल स्वस्थ जीवन बिताने के लिए अतिआवश्यक है लेकिन आजादी के आधी शताब्दी के बाद भी आज स्थिति यह है कि सभी को स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं है । इस मुद्दे पर नौंवी पंचवर्षीय योजना का माध्यवधिक मूल्यांकन ने प्रकाश डाला है । मूल्यांकन के अनुसार पिछले ग्यारह वर्षों से लगातार अच्छी वर्षा होने और केन्द्र सरकार द्वारा उच्च प्राथमिकता दिए जाने के बावजूद पेयजल की समस्या का समाधान नहीं हो पाया है । वास्तव में समस्या की कमी होने के बजाए यह समस्या हर वर्ष गंभीर होती जा रही है । ग्रामीण विकास मंत्रालय 95 प्रतिशत से अधिक 'कवरेज' का दावा को मानता है लेकिन स्वतंत्र मूल्यांकन बताते हैं कि लगभग आधे गांवों में पेयजल की कमी है । इससे भी अधिक दु:ख का विषय यह है कि भारी निवेश के बावजूद पिछले कुछ वर्ष से यह खाई बढ़ती जा रही है । 1994 से राज्य सरकारों ने भारत सरकार द्वारा दी गई राशियों की मदद से लगभग सभी आबादियों को स्वच्छ जल उपलब्ध करा दिया है या 1999-2000 के अंत तक उपलब्ध कर देंगी और इसके बाद 2001-2002 तक कवर करने के लिए केवल 5 प्रतिशत और गांव शेष रह जाएंगे। किन्तु स्वतंत्र सर्वेक्षण इस आशावादी स्थिति से सहमत होने की बजाय लगभग आधी आबादियों में भारी कठिनाइयों और गुणत्ता संबंधी समस्याओं का संकेत देते हैं । सरकारी दावों व वास्तविक स्थिति के बीच इतनी विसंगति क्यों है?

नौंवी पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में शुरु में लगभग 0.85 लाख बिना 'कवर' की गई, 3.91 लाख अंश अंशतः कवर की गई और 1.40 लाख गुणत्ता की समस्या वाली आबादिया थी । इस संबंध में कुछ उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है ।

**कुछ उदाहरण,**

योजना मूल्यांकन संगठन (पी.ई.ओं.) ने 16 राज्यों के 29 जिलों में 87 गांवों का अध्ययन बताता है कि जल की बार-बार कमी महसूस की गई । पानी के पाइपों के जरिए जल आपूर्ति के मामले में बिजलीबार-बार बंद हुई और पाइप लाइन को क्षति पहुंचने के कारण रिसाव और संदुषण हुए । हैंडपंपों के मामले में 47 प्रतिशत मामलों में निर्माण की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं थी और बार-बार यांत्रिक खराबियां आई । ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत बड़ी प्रतिशतता में लोग अतिसार और हैजे जैसी बीमारियों से पीड़ित रहते हैं । जो इस बात का संकेत है कि वे असुरक्षित 7 अस्वच्छ पेयजल स्रोतों का प्रयोग कर रहे हैं जिन गांवों में उपचार के बाद गुणवत्ता में सुधार होने का दावा किया था उन गांवों में जल से उत्पन्न बीमारियों का प्रकोप कम नहीं हुआ था । इसके निम्न कारण थे-

1. हैंड पंपों के लिए अच्छी तरह से प्लेटफार्म न बनाने से जल संदूषित होना
2. जल निकासी संतोषजनक नहीं थी
3. जल परीक्षण नहीं किया गया था
4. विसंक्रमण नहीं किया गया था ।

पुन: स्रोतों की देखभाल व वर्तमान स्रोतों का मानीटरिंग करना भी आवश्यक है । एक बार पीने के पानी का साधन पहुँचाने से ही ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि अमुख बसावट में पीने का पानी उपलब्ध है । उदाहरण के लिए भूमिगत पानी क समाप्त होना बडी यांत्रिक खराबियों अथवा जल संदूषित होने के कारण उसका प्रयोग बंद कर दिए जाने के कारण कोई गांव पानी के स्रोत फिर से उभर कर नहीं आ पाया । पानी के बिना स्रोत के लगभग 56 प्रतिशत गाँवों को स्कीमों के तहत कभी कवर नही किया गया क्योंकि उन तक पहुँचा नहीं जा सकता था । उनकी भौगोलिक स्थिति असाधारण थी तथा कुछ नई आबादियां थी ।

1. दूसरा उदाहरण राष्ट्रीय प्रायोगिक आर्थिक अनुसंधान परिषद का है । इस परिषद ने 1994 के बीच 195 जिलों में फैले 1765 गांवों का विस्तृत सर्वेक्षण करके पाया कि भारत के पूरे गांवों में से आधे गांवों के पास सुरक्षित पेयजल का कोई स्रोत नहीं है । अन्य गावों में से 17 प्रतिशत गांवों ने बताया कि पाइपों द्वारा सप्लाई किया जाने वाला पानी ही पेयजल का मुख्य स्रोत है । अन्य 18 प्रतिशत गांव हैंड पंपों का प्रयोग कर रहे थे । इस सर्वेक्षण व सरकारी दावों में भारी अंतर है क्योंकि सरकारी आकड़े अधिक गांवों को पेयजल की पर्याप्त आपूर्ति की जा रही थी ।
2. राज्यों के महालेखाकारों ने 1998 में 24 राज्यों में फैले 304 डिवीजनों में ग्रामीण जल-आपूर्ति विभागों के दस्तावेजों की समीक्षा का अनुमान लगाया कि किफायती लागत से सुरक्षित पेयजल उपलब्ध करने का मुख्य उद्देश्य किस हद तक प्राप्त हुआ है । समीक्षा से कार्यक्रम के कार्यान्वयन में बहुत से गंभीर मुद्दे और कमियां सामने आई हैं जिनमें सरकारी खजाने से दी गई बड़ी धनराशियों का दुरूपयोग भी शामिल है । मुख्य कमियां निम्न हैं-
3. पेयजल के किसी स्रोत के बिना आबादियों का फिर से उभर कर सामने आना, जिसके स्कीम का प्रभाव निष्फल हुआ ।
4. बिना पर्याप्त योजना अथवा जल स्रोतों की वैज्ञानिक तरीके से पहचान किए बगैर निधियों के गलत प्रयोग से लागत और समय दोनों में वृद्धि हुई ।
5. स्कीमें बीच में छोड़ दी गई अथवा भारी धनराशियां खर्च करने के बाद चालू नहीं कि गई थी ।
6. अपर्याप्त अनुरक्षण के कारण जल स्रोत मृत प्राय: और बंद हो गए ।
7. आवश्यकता से अधिक खरीदी गई सामग्री भंडारों में बेकार पड़ी थी/ हिसाब में दर्ज नहीं की गई थी।
8. रिंगों का घोर अल्प उपयोग ।

आइए एक नजर पानी की गुणवत्ता पर डालते हैं ।

### 9.3.4 पानी की गुणवत्ता

पानी की गुणवत्ता स्वस्थ जीवन का महत्वपूर्ण निर्धारक है । जैसे-जैसे भू-जल स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं, जल की गुणवत्ता के महत्व को स्वीकार किया जाने लगा है । फ्लूराइड और आर्सेनिक जैसे प्राकृतिक संदूषकों और कीटनाशकों जैसे रासायनिक संदूषकों का स्तर ऊचा है

और उसमें और वृद्धि हो रहीं है । फ्लूराइड सदूषण 15 राज्यों में 150 जिलों तथा और अत्यधिक आर्सेनिक पश्चिम बंगाल के 8 जिलों को प्रभावित करता है । फ्लूराइड का स्तर आध्रप्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश तथा लौह-स्तर देश के उत्तर पूर्वी तथा पूर्वी भाग में ऊंचे हैं । इसी प्रकार लवणता गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, पजाब, राजस्थान तथा तमिलनाडु में काफी अधिक है । कुछ राज्य विशेषत: आनुपातिक राज्य योजना निधियों की व्यवस्था न किए जाने की वजह से त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के अंतर्गत आवंटित निधियाँ भी पूर्ण रूप से व्यय नहीं कर पाए । परिणामस्वरूप आठवीं योजना और नवीं योजना के पहले तीन वर्षो के दौरान राशि की बड़ी मात्रा से हाथ धो बैठे हैं । इस दिशा में सबसे ज्यादा नुकसान बिहार राज्य को हुआ है क्योंकि इस राज्य को पिछले पाँच वर्षो के दौरान लगभग 400 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता प्राप्त नहीं हुई है ।

### 9.3.5 गरीब परिवारो को आवास

मानव जीवन के लिए आवास बुनियादी आवश्यकताओं में से एक है । एक सामान्य व्यक्ति के पास अपने आवास का होना उसे आर्थिक सुरक्षा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करता है । एक निराश्रित व्यक्ति को आवास का मिलना उसके अस्तित्व में गहरा सामाजिक परिवर्तन लाता है, उसे एक पहचान देता है तथा उसे अपने पास के सामाजिक परिवेश से जोड़ता है । केन्द्रीय सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबी की रेखा से नीचे वाले परिवारों को मुक्त आवास प्रदान करने के उद्देश्य से 1085-86 से इंदिरा आवास योजना कार्यान्वित है । आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक कुल 5,02 व करोड़ रुपए के व्यय से 3721 लाख घरों का निर्माण किया गया था। ग्रामीण आवास को 1006 में बढ़ावा मिला, जब केन्द्रीय सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के घर रहित गरीबों को समयबद्ध तरीके से आवास प्रदान करने के लिए आवास को बुनियादी न्यूनतम सेवाओं की कार्यसूची के सात घटकों में से एक घटक के रूप में स्वीकारा ।

1991 की जनगणना में ग्रामीण आवासों में 13720 लाख इकाइयों की कमी का अनुमान लगाया गया था, जिसमें 34.10 लाख बिल्कुल घर रहित थे और 13.10 लाख परिवार कच्चे- गैर-मरम्मत योग्य घरों में रहते थे । अनुमान है कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि को देखते हुए 1991 और 2002 के बीच की अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में 107.50 लाख अतिरिक्त मकानों की जरुरत होगी । 2002 तक ग्रामीण भारत में कुल 244.70 लाख मकानों की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया है। लेकिन 1991 से 1997 तक की अवधि में इंदिरा आवास योजना, राज्य सरकारों, हुडको, आदि द्वारा 57 लाख मकानों का निर्माण किया जा चुका है । इसलिए अब 1997 से 2002 तक की अवधि में 187.70 लाख मकानों की नितांत आवश्यकता का अनुमान है । इनमें से 846 लाख नए मकान होंगे, जबकि 103.10 लाख कच्चे काम में न आ सकने वाले मकानों की मरम्मत आदि की आवश्यकता होगी । जैसा कि 1991 की जनगणना से परिलक्षित होता है । मकानों की कमी लगभग सभी राज्यों में है, लेकिन कुछ राज्यों में बहुत अधिक कमी है । मकानों की कुल कमी में लगभग एक-तिहाई

हिस्सा बिहार का है, जिसके बाद आध्रप्रदेश, असम, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल का स्थान है। इनका हिस्सा कुल मिलाकर 44.64 प्रतिशत बैठता है । शेष राज्यों में से प्रत्येक राज्य में मकानों की कमी 5 प्रतिशत से कम है । 1991 की जनगणना के अनुसार कुल परिवारों से लगभग 40.82 प्रतिशत एक कमरे के मकान में 30.65 प्रतिशत दो कमरों के मकान में तथा 13.51 प्रतिशत तीन कमरों के मकान में या उससे अधिक में रह रहे है । मकानों की दिवारों की गुणता के अनुसार कुल परिवारों के 47.47 प्रतिशत की दीवारें घासफूस की बनी हुई है तथा लगभग 4 प्रतिशत के पास टैंट या कपडे की दीवारें हैं । लगभग 90 प्रतिशत आवासों में शौचालय का प्रावधान नहीं है । इंदिरा आवास योजना में केवल गरीबी रेखा से नीचे परिवारों की आवास-समस्या की ओर ध्यान दिया जाता है । लेकिन ऐसे कई अन्य परिवार हैं जो गरीबी की रेखा सें मामूली से ऊपर है, लेकिन जिनका संबंध आर्थिक रूप से कमजोर वर्गो से है उन्हें भी आवास की आवश्यकता है । इसलिए इस आय-वर्ग के लोगों की आवास संबंधी आवश्यकताओं को भी पूरा किए जाने की जरूरत है ।

### 9.3.6 पोषाहार जनसचार

इस समय पोषण संबंधी निम्न समस्याएं हैं -

(क) कालिक ऊर्जा अभाव और अल्प-पोषण

(ख) माइक्रो-पोषणो की कमियां

लौह और फोलिक एसिड के कारण अल्प-रक्ता

विटामिन ए की कमी

आयोडीन की कमी के कारण उत्पन्न विकार

(ग) कालिक ऊर्जा आधिक्य और मोटापा

पिछले पचास वर्षो में एक बड़ी उपलब्धि हरित क्रान्ति और खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता रहीं है । खाद्यान्न उत्पादन 1950- 51 में 50.82 मिलियन मीटरी टन से बढ़कर 1998-99 में अनुमानत: 200.88 मिलियन मीटरी टन हो गया है । यह एक चिन्ता का विषय है, कि दालों से भिन्न अनाज के उत्पादन में तो जनसंख्या वृद्धि की दरों से ऊंची दरों पर वृद्धि होती रही है किन्तु मोटे अनाज और दालों से उत्पादन में इसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई है । इसके परिणामस्वरूप दालों की उपलब्धता 1951 में प्रति व्यक्ति 60.7 ग्राम से गिरकर 1996 में 34 ग्राम तक आ गई । गांव में कुपोषण का यह मुख्य कारण प्रतीत होता है ।

**<u>एकिकृत बाल विकास स्कीम (आई.सी.डी.एस.)</u>**

बच्चों में कुपोषणता की कमी को दूर करने के लिए 1975 में एकीकृत बाल विकास स्कीम ( आई.सी.डी.एस) शुरू की गई थी । संभवतया विश्व में अनुपूरक आहार के सभी कार्यक्रमों में सबसे बड़ा कार्यक्रम है । इसके अन्य अलावा निम्न उद्देश्य हैं ।

(क) पूरक आहार उपलब्ध करके और अपेक्षित स्वास्थ्य निविष्टियों का वितरण सुनिश्चित करके 0-6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों की स्वास्थ्य तथा पोषण स्थिति में सुधार करना,

(ख) प्रारंभिक अवस्थाओं में प्रेरणा और शिक्षा के माध्यम से विद्यालय-पूर्व की अवस्था वाले बच्चों में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियां उपलब्ध करना,

(ग) गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को पूरक आहार उपलब्ध करना,

(घ) स्वास्थ्य और पोषण शिक्षा के जरिए उचित बाल सुरक्षा उपलब्ध करने के लिए माताओं की योग्यता बढाना।

शुरू में इस कार्यक्रम का फोकस अनुसूचित जनजातियों, सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों तथा ऐसे ब्लाकों की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया था जिनमें अनुसूचित जातियों के लोगों की जनसंख्या अधिक है । 1975 में 33 आई.सी डी.एस ब्लाक थे जो 1996 में बढ़कर 4,200 हो गई । नौवीं योजना के दौरान इस कार्यक्रम का उड़ीसा और आध्रप्रदेश में पोषण संस्थान ने 1997 में विश्व बैंक और भारत सरकार द्वारा पोषण सेक्टर की व्यापक समीक्षा की गई । इन मूल्यांकनों के निम्न निष्कर्ष है ।

- कार्यक्रम की बहुत ज्यादा मांग थी, किन्तु इनके वितरण, गुणवत्ता और समन्वय में समस्याएं हैं ।
- 6 से 25 मास की आयु समूह वाले बच्चों और स्तनपान कराने वाली महिलाएं आंगन बाडियों में नहीं आई और न ही उन्हें पूरक आहार प्राप्त हुआ ।
- उपलब्ध आहार 3.5 वर्ष की आयु सक वाले बच्चों में बांटा गया चाहे पोषण संबंधी उनकी स्थिति कुछ भी हो ।
- अति अल्पोषित बच्चों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं किया गया ।
- माताओं में बाल सुरक्षा संबंधी शिक्षा बहुत कम थी या न के बराबर थी ।
- कर्मकारों के प्रशिक्षण, पर्यवेक्षण तथा सामुदायिक समर्थन के बीच अंतर थे ।
- कार्यक्रमों के विभिन्न घटकों में समन्वय निम्न स्तर का था ।

आइए अब अल्परक्ता पर एक नजर डालते हैं । भारत में अल्परक्ता का प्रसार बहुत अधिक है तथापि इस माइको पोषणद कमी की सबसे अधिक उपेक्षा की जाती है । इसके लिए जिम्मेदार मुख्य कारण हैं - लौह तथा फोलिक एसिड का कम मात्रा मे सेवन करना । इसका सबसे बुरा प्रभाव गर्भवती महिलाओं तथा स्कूल-पूर्व की अवस्था वाले बच्चों पर पड़ता है । गर्भवती माहिलाओं में अल्परक्तता 50 प्रतिशत से लेकर 90 प्रतिशत तक है । आयोडीन की कमी से उत्पन्न होने वाले विकारों (आई. ई. डी) को हमारे देश में 1920 के दशक के मध्य से लेकर ही एक लोक स्वास्थ्य समस्या के रूप में स्वीकार किया गया है । राष्ट्रीय आयोडीन की कमी संबंधी कमियों पर नियंत्रण पाने वाले कार्यक्रम में ज्यादातर आयोडीनयुक्त नमक की उपलब्धता सुनिश्चित कने के लिए ध्यान केन्द्रित किया गया है और यह सफलता प्राप्त सूक्ष्मदर्शी- पोशाक कार्यक्रमों मे से एक है ।

### 9.3.7 गांव एवं बस्तियों को आपस में सड़कों द्वारा जोड़ना

गांव व बस्तियो में सड़क सम्पर्क भारत के ग्रामीण विकास के लिए ही नहीं बल्कि गरीबी कम करने के एक प्रभावी कार्यक्रम है । पिछले वर्षो में विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए राज्य

और केन्द्र स्तरों पर किए गए प्रयासों के बावजूद स्वतंत्रता के 50 वर्षों से अधिक बीत जाने के बाद भी भारत में लगभग 40 प्रतिशत गांवों में समुचित सड़क, संपर्क नहीं पहुंच पाया है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि ग्रामीण सड़कें गांवों में आर्थिक विकास लाने, रोजगार के साधन बढ़ाने और गरीबी कम करने के लिए अति आवश्यक है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना को प्रधानमंत्री ने 25 दिसम्बर, 2000 को आरंभ किया । कार्यक्रम का प्राथमिक ध्यानाकर्षण नई सद के निर्माण पर है, इसके लिए अगले सात वर्षो में लगभग एक लाख गांवो को सड़को से सुसज्जित किया जाएगा । इसके लिए अगले सात वर्षो में लगभग एक लाख गांवों को सड़को से जोड़ने का प्रस्ताव है । तथापि, कार्यक्रम के अंतर्गत मौजूदा सड़को का उन्नयन ( निर्धारित मानक तक ) करने की अनुमति भी दी जाएगी ताकि अच्छी बारहमासी सड़को के जरिए सम्पर्क एवं कार्यक्रम को प्राप्त किया जा सके ।

### 9.3.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं खाद्य सुरक्षा

खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय उस पर्याप्त खाद्य मात्रा से है, जो मनुष्य को चुस्त व स्वस्थ रखता है । अत: खाद्य सुरक्षा के लिए पर्याप्त उत्पादन एवं उत्पादित खाद्यान्न का भंडारण व वितरण जरुरी है । दूसरे शब्दों में लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति (खास तौर पर गरीबों के लिए) होनी चाहिए जिससे की वे खाद्यान्न खरीद सकें । इसका अर्थ यह हुआ कि लोगों के लिए पर्याप्त रोजगार के साधन होने जरूरी है ताकि वे रोजगार के माध्यम से अपनी क्रयशक्ति बढ़ा कर अपने व अपने परिवार के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री उपलब्ध करा सके । प्रस्तुत इकाई में खाद्य असुरक्षा के कारणों का वर्णन करते हुए पंचायतें कैसे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकती है, इस पर प्रकाश डाला गया है ।

खाद्य असुरक्षा का मूल कारण जहां गरीबी है वहीं इसके साथ-साथ उपलब्ध खाद्य पदार्थो का उचित वितरण न होना भी है । भारत में 6 लाख से भी अधिक उचित दर की दुकानों का नेटवर्क होने के बावजूद देश की आबादी के एक बड़े हिस्से को उचित दर पर आवश्यक सामग्री नहीं मिल पाती । नौवीं पंचवर्षीय योजना के माध्यवाधिक मूल्यांकन (यहां के बाद मूल्यांकन) के अनुसार 'खाद्य तक गरीबों की पहुंच न होना दो कारणों से है ' ।

पहला यह है कि 1989-99 के दशक में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि के बजाय कमी आयी थीं, लेकिन खाद्यान्नों की वसूली में वृद्धि हुई जिससे लोगों के उपभोग में अथवा गरीबों के क्रयशक्ति में कमी होने के संकेत मिलता । अर्थव्यवस्था में ढाचागत असन्तुलनों, बढ़ती हुई असमानता और इस किस्म के अन्य कारणों से ऐसा हुआ होगा । इसके साथ कम साधन सम्पन्न क्षेत्रों की उत्पादन संबंधी समस्याओं को भी जोड़ा जासकता है, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय खाद्य निगमके गोदामों में खाद्यान्नों के विशाल भडार जमा हो जाने और बाहर भूख- व्याप्त होने की खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो गई है । इन नीतिगत असन्तुलनों को दूर करना उचित ही महत्वपूर्ण है, जितना कि खाद्य उत्पादन बढ़ावा । दूसरे यदि गरीबों द्वारा खपत में वृद्धि नहीं होगी तो कृषि उत्पादों की मांग में गंभीर रूकावटें आएंगी, जिससे 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करना संभव नहीं हो पाएगा ।'

मूल्यांकन आगे कहता है कि 'कागजों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली भले ही बहुत बड़ी प्रतीत होती हो, लेकिन इसमें सब कुछ ठीक नहीं है । इस प्रणाली को कायम रखने के लिए हर वर्ष बहुत बड़े पैमान पर सब्सिडी देनी पड़ती है । कुल सरकारी व्यय के अनुपात में खाद्य अनुदान का स्तर, जो 1090 के दशक से शुरू में लगभग 25 प्रतिशत अथवा उससे कम था, बढ़कर दशक के अन्त तक लगभग 3 प्रतिशत हो गया है ।' मूल्यांकन दो अध्ययनों का उल्लेख करता है, जिससे पता चलता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबों की बजाय किनको लाभकारी रही है । बिहार में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत वितरण की स्थिति निम्न प्रकार है । (i) पी. डी. एस. की दुकानदारी को और सतर्कता समितियों की सदस्यता को भी ऐसे स्थान समझा जाता है, जहां से धन कमाया जा सकता है । (ii) उनकी नियुक्ती की प्रक्रिया राजनीति से परिपूर्ण है; और अधिकांशत: विधायकों के आदमियों को नियुक्त किया जाता है । (iii) खाद्यान्नों को संभालने के लिए उप जिला बुनियादी ढांचा बहुत घटिया स्तर का है । रांची में 20 खंड़ों के लिए 11 गोदाम थे । (iv) नागरिक आपूर्ति निगम के पास भारतीय खाद्य निगम से खरीददारी करने के लिए कोई कार्यचालन पूंजी नहीं है, गाड़ियों की हालत खराब अथवा उनके पास पेट्रोल के लिए पैसा नहीं है कर्मचारियों को महीनों तक वेतन नहीं मिलता । (v) कुल मिलाकर केवल सरकारी कर्मचारियों, एजेंटों और खुदरा व्यापारियों को ही इस स्कीम से लाभ होता है । बुनियादी ढ़ांचे के अभाव और सरकारी एजेंसियों के पास धन की कमी की समस्याएं केवल बिहार में ही नहीं है, पश्चिम और दक्षिण के कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकतर राज्य इन कठिनाइयों के शिकार हैं ।

एक अन्य अध्ययन में कहा गया था कि उचित मूल्य वाली प्रत्येक दुकान के मालिक को औसत रूप से नौ सरकारी पदाधिकारियों का भरण-पोषण करना पड़ता है । यह महत्वपूर्ण है कि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अपनाए जाने के बाद उत्तर प्रदेश, बिहार और असम जैसे गरीब राज्यों को किया जाने वाला नियमन पहले की अपेक्षा दुगने से अधिक हो गया लेकिन राज्यों द्वारा कम मात्रा में माल उठाया गया और गरीबीरेखा से नीचे बसर कर रहे लाभभागियों द्वारा ली गई मात्रा तो और भी कम थी । इस स्कीम ने इन राज्यों के पोषाहार के स्तरों पर कोई प्रभाव नहीं डाला है । उपरोक्त संदर्भो से स्पष्ट है कि खाद्य सुरक्षा के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाकर गरीबों का स्तर ऊंचा करके तथा पी.डी.एस से संचालन में सुधार करके किया जा सकता है । आईए देखते हैं खाद्य सुरक्षा के लिए क्या म्यूहरचना हो सकती है। खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए जो व्यूह रचना अपनाई जानी चाहिए उसमें अन्य के अलावा निम्न आयाम होने चाहिए ।

(i) व्यापक एवं सुक्ष्म स्तर पर नीतियों व कार्यक्रमों की धार विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए हो ।

(ii) कृषि उत्पादन को बढ़ाना व ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का फोक्स गरीबों पर ही हो ।

(iii) भूमि व प्राकृतिक संसाधनों को वंचित वर्गो की पहुंच में लाना ।

(iv) रोजगार के अवसर बढ़ाना ।

(v) खाद्य पदार्थो की पूर्ति में स्थाईपन लाना ।

(vi) कार्यक्रमों के संचालन में पारदर्शिता लाना ।

(vii) विकास व सामाजिक न्याय की योजना बनाने व क्रियान्वयन में लोगों (मुख्यत: वंचित वर्गो) की भागीदारी सुनिश्चित करना ।

**बोध प्रश्न - 1**

1. न्यूनतम आवश्यकताओं से क्या अभिप्राय है? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए ।
2. विभिन्न न्यूनतम आवश्यकताओं की वास्तविक स्थिति क्या हे?
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर टिप्पणी कीजिए ।

## 9.4 भूमि संसाधन का संरक्षण एवं बंटवारा

भूमि प्राकृतिक संसाधनों में से एक ऐसा अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संसाधन है जिसका कुशल प्रबंधन ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए विशेष रूप से गरीबी और पिछड़ेपन की समस्याओं को दूर करने के लिए आवश्यक है । यह सड़कों, उद्योगों, संचार और अन्य सुविधाओं के रूप में सभी प्रारंभिक उत्पादन प्रणालियों को आधार प्रदान करता है। अनुमान है कि हर वर्ष लगभग 50 लाख टन पोषक तत्वों सहित 5,000 मिलियन टन सर्वोत्तम मृदा अपरदित हो जाती है । इसका लगभग एक- तिहाई भाग समुद्र में चला जाता है और शेष जलाशयों और नदी तलों में गाद के रूप में जम जाता है जिससे बाढ़ आती है । देश में लगभग 38 प्रतिशत क्षेत्र में साधारण से उच्च डिग्री में जल आधारित कटाव होता है जिसके लिए अधिकांशत: वाटरशेड विकास जैसे उपयुक्त मृदा और जल संरक्षण उपायों की आवश्यकता है । ऐसे शुष्क क्षेत्रों जिनमें साधारण से उच्च डिग्री से मृदा का क्षय होता है, कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 4 प्रतिशत भाग है। इस प्रकार देश की कुल क्षेत्र में से लगभग 42 प्रतिशत क्षेत्र में मृदा और जल संरक्षण प्रयास प्राथमिकता आधार पर किए जाने की जरूरत है । देश में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता जो 1901 में 1.37 हैक्टेयर थी, 1951 में घटकर 0.89 हैक्टेयर रह गई थी । इसी प्रकार भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जो 1981 में 0.50 हैक्टेयर थी, 2000 में घटकर 0.33 हैक्टेयर रह गई है । इसके अलावा समस्त भूमि को कृषि प्रयोजनों के लिए उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है क्योंकि आर्थिक विकास और स्थायित्व वाले स्थानों पर और उनके आस-पास सभी प्रकार के विकासात्मक कार्यकलाप भी किए जाने होते हैं ।

### 9.4.1 भूमि सुधार

ग्रामीण भूमि का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है पर सच्चाई यह है कि इस पर कुछ ही लोगों का अधिकार है । ये मुट्ठी भर लोग संपूर्ण जीवन को हर तरह से प्रभावित करते हैं । आइए इन विषय पर चर्चा करते हैं ।

#### 9.4.1.1. जोत की भूमि की उच्चतम सीमा

जोत की उच्च सीमा निर्धारित करके अधिशेष जमीन को भूमिहीनों, में बांटने की जरूरत है । उच्च सीमा में ढील सावधानी से देने की जरूरत है । उदाहरण के लिए, बागवानी-भूमियों की भूमि की उच्चतम सीमा में ढील दी है और उड़ीसा काजू के बागानों के बारे में इस

पर विचार कर रहा है । पश्चिम बंगाल भी मछलियों के तालाबों के मामले में ऐसी ढील दिए जाने पर विचार कर रहा है । ये कदम गरीबों के हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेंगे । आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की दृष्टि से सुधार करना अति महत्वपूर्ण है, जनजातीय भूमि का अन्यसक्रमण और भूमि में महिलाओं का अधिकार करना जरूरी है ।

### 9.4.2 जनजातीय वर्ग की भूमियों के अन्यसंक्रमण को रोकना

अनेक विकास परियोजनाओं, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और औद्योगिक क्रियाकलापों के नतीजन जनजातीय क्षेत्रों में गैर- जनजातीय की वृद्धि हुई है । इसके कारण स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय से जनजातिय भूमि के अन्य संक्रमण की प्रक्रिया जारी है । वास्तव में, गैर-जनजातीय लोग इन क्षेत्रों के विकास के नाम पर अनुसूचित क्षेत्रों में घुस आते हैं, जबकि इनके घुसने से स्थानीय जनजातीय आबादी रोजगार की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाती है । परिणामस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में भारी रोष है । उड़ीसा के चार जिलों धेनकनाल, गजम, कोरापुट और फूलबनी के अध्ययन में यह अनुमान लगाया गया है कि 25-30 वर्षो की अवधि में लगभग 56 प्रतिशत जनजातीय भूमि गैर-जनजातीय लोगों के हाथ में चली गई है । इसमें से 40 प्रतिशत भूमि कर्जदारी और बंधक रखे जाने के कारण, 23 प्रतिशत अतिक्रमण द्वारा, 17 प्रतिशत विकास परियोजनाओं से हुए विस्थापन, 15 प्रतिशत निजी बिक्री द्वारा और शेष भूमि बाढ़ों और प्राकृतिक विपत्तियों के कारण ये लोग हाथ धो बैठे । जनजातीय लोगों और सरकारी पदाधिकारियों में भूमि के अधिकारों के बारे में कानूनी जानकारी के अभाव और गैर-प्रभावकारी प्रशासनिक ढांचे के परिणामस्वरूप जनजातियों की भूमि का अन्यसक्रामण हुआ है । कानूनों में जैसे स्वत: कार्यवाही शुरू करने के तंत्र का अभाव, प्रतिकूल कब्जे के बारे में परिसीमा की सामान्य अवधि, अतिचार के विरुद्ध और गैर-जनजातीय लोगों से धोखाधड़ी से भूमि के अन्तरण के विरुद्ध उपबन्ध का अभाव । चूंकि जनजातीय लोग आमतौर पर कानूनी उपबन्धें और प्रक्रियाओं के अनजान होते हैं, इसलिए उनका आसानी से शोषण किया जा सकता है । जनजातीय जमीन के अनुपयुक्त रिकार्डो के कारण भी अन्यसंक्रामण हुआ है ।

संविधान के 73 वें संशोधन अधिनियम, 1992 को लागू करने के लिए पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 के उपबन्ध आठ राज्यों अर्थात् आध्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान के अनूसूचित क्षेत्रों में लागू किए गए । इस अधिनियम का उद्देश्य जनजातीय लोगों के हाथों में जल, जंगल व जमीन देकर उनको अपने भाग्य का विधाता बनाना है । लेकिन कानून के कड़े उपबन्ध केवल कागजों तक सीमित है और राज्य सरकारों द्वारा उन्हें कार्यरूप नहीं दिया गया है । इसके लिए इस अधिनियम से संबंधित कारणों में संशोधन करने की जरूरत है । अतीत में भूमि सुधार नीति महिलाओं के भूमि संबंधी अधिकारों के प्रश्न का समाधान करने में सफल नहीं रहीं है । कृषि में महिलाओं द्वारा बहुत बड़े पैमाने पर भाग लिया जाता है । अनुमान है कि 78 प्रतिशत महिला कर्मकार कृषि में कार्य करती हैं, जबकि इसकी तुलना में पुरुष कर्मकारों की संख्या 58 प्रतिशत है । ऐसे ग्रामीण परिवारों की संख्या में वृद्धि होने के कारण जिनकी वास्तविक मुखिया

महिलाएं है । कृषि के महिलाकरण में निरंतर वृद्धि हो रही है, लेकिन भू- सम्पदा में महिलाओं के असमान हिस्से के कारण, महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक स्थिति आमतौर पर पुरुषों की तुलना में कम है ।

**बोध प्रश्न 2**

1. भूमि संसाधन व संरक्षण से क्या अभिप्राय है?
2. भूमि सुधार की समस्या पर लेख लिखिए ।

## 9.5 ग्रामीण बेरोजगारी एवं गरीबी

रोजगार सृजन एवं गरीबी उन्मूलन ग्रामीण विकास में एक प्रमुख चुनौती बना हुआ है । आइए ग्रामीण रोजगार अवसरों को बढ़ाने व गरीबी हटाने के विभिन्न कार्यक्रमों की चर्चा करने से पहले एक नजर ग्रामीण बेरोजगारी व गरीबी पर डाल ले। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के द्वारा पिछले वर्ष जारी सर्वेक्षण के अनुसार देश की बेरोजगारी का 62 प्रतिशत भाग ग्रामीण बेरोजगारी का है । गरीबी व बेरोजगारी दूर करने के प्रयत्नो की बात सरकार द्वारा सभी योजनाओं मे काही गई है । लेकिन इस ओर प्रगति संतोषजनक नहीं हुई है । गरीबी के निकटतम आकड़े 1993-94 वर्ष के उपलब्ध हैं । इनके अनुसार इस वर्ष देश की आबादी का करीब 36 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा से नीचे था । ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 37.27 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 32.36 प्रतिशत था । इसका अर्थ यह नहीं कि इस दिशा में कुछ भी प्रगति नहीं हुई है । कुछ प्रगति अवश्य हुई है । उपलब्ध आकड़ों के अनुसार 1973-74 में देश की जनसंख्या का लगभग 55 प्रतिशत भाग गरीबीरेखा के नीचे था । दस साल बाद 1983 में यह प्रतिशत घट कर 44.48 हो गया और दस साल बाद 1993-94 में यह घटकर 35.97 अर्थात 36 प्रतिशत हो गया । इस प्रकार दो दशकों में इसमें 19 प्रतिशत की गिरावट आई है । पर चूँकि इसी बीच जनसंख्या में वृद्धि भी हुई है, अत: गरीबों की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं आई है । 1973 - 74 में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों को मिलाकर गरीबों की संख्या 32.13 करोड़ थी जबकि 1993 - 94 में में भी उनकी संख्या 32.03 करोड अर्थात लगभग उसी बराबर । कुछ एक राज्यों - जैसे बिहार, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा में तो इन की संख्या पहले से भी बढ़ गई है । जैसे बिहार में 1973-74 में 3.70 करोड़ से बढ़कर 1993-94 में 4.93 करोड़, उत्तरप्रदेश मे इसी अवधि में 5.35 करोड़ से बढ़कर 6.04 करोड़, हरियाणा में 36 लाख से बढ़कर 44 लाख, हिमाचल प्रदेश में 9.73 लाख से बढ़कर 15.86 लाख, महाराष्ट्र में 2.87 करोड़ से बढ़कर 3.85 करोड़, उड़ीसा में 1.54 से बढ़कर 1.60 करोड़ हो गई है । यदि इसी प्रकार का रूझान कायम रहा तो गरीबी दूर होने मे और लगभग 30.35 वर्ष लग सकते हैं ।

यह एक विचारणीयमुद्दा है कि क्या गरीब जनता इतने दिनों तक शांत बैठी रहेगी । नहीं इससे समाज में तनाव बढ़ सकता है जिसके आसार नजर आ रहे हैं । स्वत: रोजगार सृजन व मजदूरी रोजगार सृजन की समस्याओं पर प्रकाश डालने से पहले आइए सम्पूर्ण ग्रामीण गरीबी उसकी स्थिति व कारणों पर एक नजर डालते चलें । नौवीं पंचवर्षीय योजना के

मध्यावधिक मूल्यांकन के अनुसार 1980 के दशक में गरीबी में काफी कमी हुई थी लेकिन हाल के अनुमानों से पता चलता है कि नौवीं योजना में गरीबीरेखा से नीचेरहने वाले लोगों के अनुपात और उनकी संख्या में कमी करने के लक्ष्य योजना की अवधि के पहले दो वर्षो में प्राप्त नहीं हुई है । इसके निम्न संभावित कारण प्रतीत होते हैं ।

1. राज्य सरकारों के आर्थिक संकट के परिणामस्वरूप उनके द्वारा सामाजिक सेवाओं पर कम खर्च किया गया ।
2. कृषि एवं विशेष रूप से खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की गति धीमी हो जाना और कृषि का विकास कम व्यापक रूप में होना ।
3. कृषि क्षेत्र में रोजगार की सघनता की कमी और वास्तविक मजदूरी में कम वृद्धि ।
4. उत्तरी एवं पूर्वी राज्यों में सबसे गरीब लोगों तक पहुँचने में लक्ष्य गत सार्वजनिक वितरण प्रणाली की असफलता।
5. कृषि भिन्न स्रोतों में नगण्य विस्तार ।
6. गरीबी उन्मूलन एवं वाटरशेड विकास की स्कीमों का अकुशलता पूर्वक क्रियान्वयन ।

आइए अब ग्रामीण रोजगार बढ़ाने व गरीबी कम करने के मुख्य कार्यक्रमों की कमियों पर प्रकाश डालते हैं । ग्रामीण रोजगार सृजन के मुख्यत: दो तरह के कार्यक्रम हैं ।

**1. स्वत: रोजगार कार्यक्रम** - इस कार्यक्रम में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम ( आई.आर.डी. पी), ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम), ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा), गंगा कल्याण योजना (जे.के.वाई.) तथा दस लाख कुओं की योजना (एम.डब्ल्यू.एस) थी लेकिन अप्रैल, 1999 में इन सभी कार्यक्रमों को मिलकर एक नया कार्यक्रम बनाया है जिसका नाम स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना है । लेकिन इन स्कीम की जड़े अभी जमीन से मजबूती से नहीं जमी है । इसलिए यहाँ पर कमियां की व्याख्या इससे पहले कार्यक्रमों की ही करेंगे ।

**2. मजदूरी रोजगार कार्यक्रम** - इस तरह के कार्यक्रम में जवाहर रोजगार योजना व रोजगार आश्वासन स्कीम शामिल है । अप्रैल, 1999 में जवाहर रोजगार योजना का नाम बदलकर जवाहर ग्राम समृद्धि योजना कर दिया था । इस समय इस कार्यक्रम का 'फोकस' मांग पर आधारित ग्रामीण ढांचा तैयार करना है । यह कार्यक्रम ग्रामीण समुदाय में स्कूल भवन, सड़कें आदि जैसी स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन करने के लायक बनानें हेतु ग्राम पंचायतों द्वारा कार्यान्वित किया जाता है।

आइये पहले स्वतः रोजगार सृजन कार्यक्रमों के संचालन में आई समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

1. कार्यक्रम के अन्तर्गत सब्सिडियों पर खर्च की गई विशाल राशि अधिकांशत: लाभभोगियों को प्राप्त नहीं हुई ।
2. ऐसे क्रियाकलापों पर कम जोर देना जिनके लिए किसी स्थिर परिसम्पत्तियों की जरूरत नहीं होती जैसे व्यापार मेला व प्रोसेसिंग संबंधी क्रियाकलाप । मांग के आधार पर ऋण देने के स्थान पर, बैंकों ने अपने आपकों अभी तक अनुमोदित क्रियाकलापों की सूची

तक सीमित रखा है । कुछ कार्यो में सीमा से अधिक ऋण दिया गया । उत्तरप्रदेश में एक बैंक ने 143 परिवारों वाले एक गांव में दुकानें खोलने के लिए 20 ऋण दिये ।

3. आई.आर.डी.पी. इस गलत धारणा के आधार पर बचतों की पूर्णतया उपेक्षा करता है कि गरीब लोग बिल्कुल बचत नहीं कर सकते ।

4. आई.आर.डी.पी. इस गलत धारणा के आधार पर बचतों की पूर्णतया अपेक्षा करता है कि गरीब लोग बिल्कुल बचत नहीं कर सकते ।

5. कार्यक्रम पहले से स्थापित लघु उद्यमों जैसे दर्जी, बुनकर, दुकानदार की ओर ध्यान नहीं देता । जबकि नए उद्यमों को सबसिडी देने के बजाए मौजूदा इकाईयों की समस्याएं चाहे वह डिजाइन संबंधी है, विपणन संबंधी है या कार्यचालन पूंजी की है, उन्हें हल करनी चाहिए।

6. आई.आर.डी.पी. में सामाजिक अन्त:दोष का अभाव है । सामाजिक अन्त:दोष एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके जरिए गरीब ऋण लेता अपने आपकों समूहों के रूप में संगठित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ।

7. हो सकता है कि इस कार्यक्रम से प्रत्यक्ष परिव्यय के रूप में कुछ गरीब लोगो को थोड़ा बहुत लाभ हुआ हो, लेकिन पांच में से एक से ज्यादा को इससे गरीबी रेखा को पार करने में सफलता नहीं मिली है । छठीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में 50 लाख पशुओं को इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गरीब परिवारों में बाँटा गया था लेकिन इस संख्या का पशुगणना में कहीं परिलक्षित नहीं हुई है ।

8. लाभार्थियों की पहचान करने के लिए जनता की भागीदारिता को बढ़ाने के प्रयासों के बावजूद यह कार्यक्रम भारी मात्रा में नौकरशाही के तौर-तरीकों वाला कार्यक्रम बना हुआ है।

9. आई.आर.डी.पी. कार्यक्रम के एक संबंध कार्यक्रम 'ट्राइसेम' का उद्देश्य 18 - 35 वर्ष के आयु वर्ग के ग्रामीण गरीबों को बुनियादी तकनीकी और उद्यमशीलता के कौशलों का प्रशिक्षण देना था ताकि वे आमदनी जुटाने वाले क्रियाकलाप शुरू कर सकें । लेकिन आई.आर.डी.पी. के समवर्ती मूल्यांकन ( 1992 - 93 ) से पता चलता है कि 4 प्रतिशत से कम लाभ भोगियों को 'ट्राइसेम' के अन्तर्गत प्रशिक्षण मिला । कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण किए गए ग्रामीण युवकों को दिलचस्पी केवल वृतिकाएं प्राप्त करने में थी । उन्होंने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त हुए ज्ञान का उपयोग स्व-रोजगार की संभावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए नहीं किया ।

10. डी.डब्ल्यू.सी.आर.ए का उद्देश्य आई.आर.डी.पी. के महिला संघटक को सुदृढ़ करना है । इस कार्यक्रम का प्रयास था कि स्व-रोजगार के अवसर प्रदान करने और बुनियादी सामाजिक सेवाएं उपलब्ध कराकर महिला और बच्चों के रहन सहन की स्थिति में सुधार किया जाए । शुरू में तो राज्यों मे इन समूहों की गतिविधियां ठीक चली लेकिन थोड़े समय बाद कुछ समूह अनुप्रयुक्त चयन, समूह के सदस्यों में मेल-जोल का अभाव,

आगे व पीछे के 'लिकेज' का कमजोर होना, संरचनात्मक व वित्तीय सहायता की कमी, व्यावसायिक दृष्टिकोण का अभाव तथा अपर्याप्त प्रशिक्षण एवं प्रेरणा का अभाव रहा है।

जैसा कि पहले भी जिक्र किया है कि अप्रैल, 1999 में सभी स्वरोजगार कार्यक्रम को मिलाकर स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना बनाई है । यह कार्यक्रम एक सम्पूर्णवादी कार्यक्रम है क्योंकि इसमें स्वरोजगार के सभी पहलूओं जैसे भागीदारिता पूर्ण दृष्टिकोण और बुनियादी ढ़ांचे की सुविधाओं, प्रौद्योगिकी, ऋण और विपणन प्रबंधों की आवश्यकता करना है । इस स्कीम की पूरी तरह जड़े जमीन में जमनी है । लेकिन मध्यावधिक मूल्यांकन के अनुसार वैसे यह कार्यक्रम ऋण-एवं- सब्सिडी कार्यक्रम है और अभी उसमें आई.आर.डी.पी. की बहुत सी उपरवर्णित त्रुटियां हैं । इसलिए माइक्रो-ऋण आधारित क्रियाकलापों के जोर पकड़ने पर उन्हें दूर करना जरूरी है ।

आइए अब मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को लागू होने के क्या-क्या खामियां हैं उन पर प्रकाश ड़ालते हैं । जवाहर रोजगार योजना अप्रैल, 1989 से शुरू की गई थी । इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए ग्रामीण आर्थिक बुनियादी ढाचें, सामुदायिक और सामाजिक परिसम्पत्तियों का निर्माण करके ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार व अपर्याप्त रोजगार प्राप्त लोगों के लिए अतिरिक्त लाभदायक रोजगार का सृजन करना था । इस परिचय के बाद आइए इसमें क्रियान्वयन पर प्रकाश डालते हैं ।

1. ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जून 1993 से मई 1994 के दौरान किए गए समवर्ती मूल्यांकन बताता है कि मोटे रूप से प्रति व्यक्ति 3 दिन का रोजगार सृजित किया गया जिससे लाभार्थियों की आमदनी के स्तर पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ सकता था। इतना रोजगार गांव में बेरोजगारी या अपर्याप्त रोजगार की समस्या को दूर करने के लिए आवश्यकता से बहुत कम था ।
2. उपलब्ध संसाधनों को विभिन्न गतिविधियों में फैला दिया ताकि अधिक से अधिक क्षेत्रों/ व्यक्तियों को कवर किया जा सके । लेकिन ऐसा करने से रोजगार की अवधि का ध्यान नहीं रखा गया ।
3. इस कार्यक्रम को मजदूरी रोजगार कार्यक्रम की बजाय परिसम्पत्ति-निर्माण के कार्यक्रम के रूप में देखा गया क्योंकि सारा ध्यान परिसम्पत्तियों के सृजन पर केन्द्रित था । जो कार्य किए वे श्रमप्रधान न होकर पूंजी प्रधान थे जो कार्यक्रम की गाईडलाईन के विरुद्ध थे ।
4. कार्यक्रम क्रियान्वयन में ठेकेदारों को मनाई के बावजूद उनका परियोजनाओं के क्रियान्वयन में प्रयोग किया गया । दिखाया तो यह गया कि परियोजनायें अनुसुचित जातियों के क्षेत्रों में लागू की गई है लेकिन वास्तव में ये परियोजनाएं उच्च जातियों वाले क्षेत्रों में लागू की गई ।
5. महिलाओं की शिकायत थी कि रोजागार सरपंच के समर्थकों को ही अधिक बल मिला । कुल सृजित रोजगार में महिलाओं की हिस्सेदारी मात्र 17 प्रतिशत थी । धनराशियों की कमी के कारण बहुत से निर्माण कार्य समय पर पूरे नहीं किए जा सके ।

6. ग्रामीण निर्माण कार्यों के कार्यक्रमों से भ्रष्टाचार की प्रगति पनपी है । हाजिरी रजिस्टरों और माप-पुस्तकें में हेर-फेर करना आम बात पाई गई । इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप धनराशियों की भारी हानि हुई जिसका उपयोग बुनियादी ढांचे के निर्माण के लिए किया जा सकता था । उपरोक्त समस्याओं के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ सामुदायिक परिसम्पत्तियों के सृजन करने में सफलता मिली है ।
7. क्रियान्वयन की सही रिपोर्ट न देना । फील्ड स्टाफ ने जिस तरह के आकड़ों की जरूरत है उसी तरह की झूठी रिपोर्ट देना सीख लिया ।
8. रोजगार सृजन की सतत् प्रक्रिया न चलना क्योंकि एक बार जहां रोजगार के अवसर समाप्त हो जाते है । फिर गरीब परिवार जो रोजगार पाने से गरीबी रेखा से ऊपर हुऐ थे फिर गरीबी रेखा से नीचे पहुंच जाते हैं ।
9. इस कार्यक्रम एवं इसी तरह के अन्य कार्यक्रमों से राजनैतिक और प्रशासनिक दोनों स्तरों पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है ।

**बोध प्रश्न - 3**

1. गरीबी की इस समय क्या स्थिति है? इसके बढ़ने के क्या कारण है?
2. स्वत: रोजगार कार्यक्रम व मजदूरी रोजगार कार्यक्रम से क्या अभिप्राय है?
3. स्वत: रोजगार कार्यक्रम के संचालन में क्या-क्या कमियां हैं?
4. मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के संचालन में क्या-क्या कमियां हैं?

## 9.6 पंचायती राज

उम्मीद की गई थी कि पंचायतें अपने स्तर पर आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनाकर व उन्हें लागू करके ग्रामीण विकास को जनोमुखी बनाएगी लेकिन इन्हीं संस्थाओं की अनेक समस्याए जो अन्त: ग्रामीण विकास की ही समस्या बन गई है । 73 वें संविधान संशोधन में पंचायतों की संरचना, गठन, वित्त आयोग व चुनाव आयोग के गठन के अलावा महत्वपूर्ण प्रावधान पंचायतों को अधिकार व शक्तियां प्रदान करना था । अधिनियम में इसका खुलासा न करके इस प्रावधान को राज्यों के विधान मंडल पर छोड़ दिया था । इस प्रकार यह प्रावधान अनिवार्य प्रावधान ही था । यहां पंचायतों को कितने अधिकार व शक्तियां प्रदान की गई है इसी पहलू पर अधिक जोर देते हुए राज्य पंचायत अधिनियमों की समीक्षा करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि पंचायतें किस हद तक स्वायत्त है । इसके अतिरिक्त पंचायत प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम 1996 के द्वारा 73 वें संविधान संशोधन को देश के आठ राज्यों के (बिहार, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, आध्रप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र) अनुसुचित क्षेत्रों में विस्तारित किया गया है । विस्तारित राज्यों के अधिनियमों पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है ।

### 9.6.1 कार्य एवं शक्तियों का बंटवारा

राज्य पंचायत राज अधिनियमों का अवलोकन करने से पता चलता है कि ग्राम सभा व पंचायतों के तीनों स्तरों को विकास महत्वपूर्ण कार्य नहीं दिए गए हैं । ग्राम सभा सम्पूर्ण

पंचायती राज व्यवस्था का दिल व दिमाग है लेकिन कुछ राज्य जैसे केरल, मध्यप्रदेश व पंजाब आदि को छोड़कर इस संस्था को मात्र बातचीत की संस्था बना दिया है । आम जनता ग्राम सभा की बैठकों में जाने से कतराती है क्योंकि उनको उससे कोई लाभ नजर नहीं आता । बैठक में जाने के चक्कर में वे अपनी दिहाड़ी नहीं गवाना चाहती । अधिकार व शक्तियां देने की यही कहानी पंचायतों के तीनों स्तर के बारे में भी दोहराई जा सकती है । कुछ राज्यों ने तो संविधान की 11 वीं अनुसूची को ध्यान में रखकर पंचायतों के तीनों स्तरों पर कार्य आवंटन करने के बजाय हूबहू 11 वीं अनुसूची को ही पंचायत अधिनियम में रख दिया है । आध्रप्रदेश सरकार ने ग्राम पंचायतों के विकास, सामाजिक संपत्ति व रखरखाव तथा जन सुविधाओं से संबंधित कार्य किए हैं । इसके अतिरिक्त पंचायत अधिनियम में कहा कि अनुसूची एक में उल्लेखित कार्य भी ग्राम पंचायत को दिए जा सकते है। अनुसूची एक और कुछ नहीं 73 वें संविधान संशोधन की 11 अनुसूची की नकल है । यही स्थिति मंडल पंचायत तथा जिला परिषद पर भी है ।

गुजरात राज्य में वैसे तो काफी हद तक पंचायतों के तीनों स्तरों पर कार्यो का बंटवारा उचित प्रकार से किया गया है लेकिन फिर भी कुछ कार्य जैसे शिक्षा का बंटवारा पंचायतों की क्षमता को देखकर नहीं किया है । इसी तरह हरियाणा सरकार ने 16 विभाग के कुछ कार्य पंचायतों के तीनों स्तरों पर प्रशासनिक आदेश द्वारा हस्तांतरित किए हैं। लेकिन उनसे संबंधित कर्मचारियों एवं वित्तीय स्रोतों के आवंटन के बारे में कोई ठोस कार्यवाही नहीं की है, संक्षेप में पंचायतों की भूमिका पर्यवेक्षक से ज्यादा नहीं है । लगभग यही स्थिति हिमाचल प्रदेश की भी है । कर्नाटक में वैसे तो पंचायत के तीनों स्तरों के कार्यो का अलग-अलग बंटवारा किया है, लेकिन अधिनियम में ऐसे प्रावधान है जिनके माध्यम से कोई भी कार्य सरकार पंचायतों से वापस ले सकती है । मध्यप्रदेश में जब 73 वें संविधान संशोधन को ध्यान में रखकर पंचायती राज अधिनियम पारित हुआ था तो पंचायतों के कार्यो का बटवारा अस्पष्ट था लेकिन बाद में राज्य सरकार द्वारा स्पष्ट किया गया ।

उत्तरप्रेदेश सरकार ने कुछ प्रशासनिक आदेशों द्वारा पंचायतों को हस्तांतरित किए थे, जो मुख्यत: देखरेख और निरक्षण से संबंधित थे । लेकिन बाद में राज्य सरकार को सशक्त करने की दिशा में कुछ सकारात्मक कदम उठाए जिसके तहत जुलाई, 1099 में 12 विभागों के प्रशासनिक एवं वित्त अधिकार पंचायतों को सौंपे गए । विभागों के कर्मचारी भी पंचायत के तहत काम करेंगे लेकिन उनकी सेवा शर्तो में कोई परिवर्तन नहीं होगा । प्रदेश में वित्तीय अनियमितताओं तथा निर्वाचित पंचायत सदस्यों द्वारा पद के दुरूपयोग की शिकायतों की जांच के लिए जिला स्तर पर लोकपाल समितियां बनाने की घोषणाएं भी की गई । पंचायतों का कार्य सुचारू रूप से करने के लिए संबंधित विषयों की समितियां बनाने का अभियान भी शुरू किया गया । जनवरी, 1999 में राज्य सरकार ने एक अध्ययन दल का गठन भी किया, जिसका कार्य अन्य राज्यों की पंचायत राज व्यवस्था का अध्ययन कर पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए सुझाव देना था । लेकिन जमीनी स्तर पर इन प्रयासों का उतना प्रभाव नहीं दिखा जेतना दिखना चाहिए था । शायद सरकार विकेन्द्रीकरण का अपना प्रयास लोगों तक ठीक ढंग से नही पहुँचा पाई ।

तमिलनाडु में तो पंचायतों को अधिक शक्ति देने के मुद्दे पर जिला पंचायत को समाप्त करने का सवाल ही खड़ा हो गया था । सत्तारूढ़ सरकार चाहती थी कि जिला पंचायत का अधिकार क्षेत्र असामान्य रूप से बड़ा न रखा जाए क्योंकि कुछ जिला पंचायतों में 9 से 10 विधान सभाएं तथा 1 से 2 लोकसभा चुनाव क्षेत्र आते हैं ।

### 9.6.2 वित्तीय साधन

पंचायतों को अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए वित्तीय साधन होने आवश्यक हैं । विभिन्न पंचायती राज अधिनियमों के प्रति संबंधी प्रावधानों पर नजर डालने से सामने आता है कि बिहार, गुजरात, हरियाणा, पंजाब व उत्तरप्रदेश राज्यों ने कर लगाने की शक्ति ग्राम पंचायतों को सौंपी है । आध्र प्रदेश, गोवा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा व तमिलनाडु में जिला स्तर पर कर लगाने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट नहीं है । राज्य पंचायत अधिनियमों में अनेक जगह किन्तु व परन्तु है । जिससे क्या- क्या कर लगाने है साफ तौर पर पता नहीं चलता है । महाराष्ट्र, केरल, बिहार, गोवा एवं त्रिपुरा आदि में राज्य जिला, ब्लॉक एवं ग्राम पंचायतों के बीच वित्तीय साधनों के बंटवारे का स्पष्ट प्रावधान नहीं है ।

अधिकतर राज्य वित्त आयोगों ने अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार की सौंप दी है । विभिन्न राज्य सरकारों ने आयोगों की सिफारिशों को आंशिक रूप से मान तो लिया है लेकिन अभी तक विधायी या प्रशासनिक आदेशों के माध्यम से लागू नहीं किया ।

### 9.6.3 नियंत्रण प्रक्रिया

पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनने के लिए उन्हें नियंत्रण मुक्त वातावरण में कार्य करना आवश्यक है। लेकिन राज्य के पंचायती राज्य अधिनियमों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पंचायतों को बर्खास्त करने, पंचायतों को निर्देश देने, पंचायत प्रतिनिधियों को बर्खास्त करने से संबंधित अनेक प्रावधान हैं । जो सरकार के अधिकार क्षेत्र में है । यद्यपि पंचायतों को अपने स्तर पर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजना बनाने की जिम्मेदारी तो दी है, लेकिन इस महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए पंचायतों को कितने तकनीकी व गैर तकनीकी कार्मिकों की आवश्यकता होगी इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है ।

स्पष्ट है कि पंचायती राज अधिनियमों के अनेक प्रावधान पंचायतों का स्वायत्त शासन की संस्थाएं नहीं बनाते । पंचायतों को अपने स्तर पर निर्णय लेने व पर्याप्त वित्त जुटाने का प्रावधान नहीं है । 'स्थिति कुछ घर बार सब तुम्हारा कोठी कुठले को हाथ मत लगाना', जैसी है।

### 9.6.4 बिला नियोजन समिति

जिला स्तर पर नियोजन समिति बनाने का प्रावधान है । यह समिति ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के लिए बनी योजनाओं को समन्वित करके सम्पूर्ण जिले की योजना बनायेगी इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण समिति है । सभी राज्यों ने इनका प्रावधान किया है । अभी तक सभी राज्यों में इसका गठन नहीं हुआ है । इसका अध्यक्ष कौन होगा इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है । कुछ राज्य जैसे केरल, राजस्थान, असम, बिहार आदि ने जिला पंचायत के

अध्यक्ष को इस समिति का अध्यक्ष बनाया है लेकिन अधिकतर राज्यों में या तो मंत्री या जिलाधीश को इसका अध्यक्ष बनाया है ।

### 9.6.5 पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम 1996

73वें संविधान संशोधन को देश के पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों में पंचायत ( अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम 1996 के द्वारा विस्तारित किया गया । इस अधिनियम के अनूसूचित क्षेत्रों के जल, जंगल व जमीन का अधिकार ग्राम सभा को दिया है । इस अधिनियम को ध्यान में रखकर बिहार राज्य को छोड़कर अन्य सभी राज्यों ने अपने अधिनियमों में बदलाव किए हैं । लेकिन इस अधिनियम को प्रभावी ढ़ंग से लागू करने के लिए वन अधिनियम, राज्य सीमा शुल्क अधिनियम, लघु खनिज अधिनियम, महाजन अधिनियम आदि अधिनियम को बदलने की जरूरत है जिस ओर मध्यप्रदेश के अतिरिक्त अन्य राज्यों ने पूर्णतया रूप से आवश्यक कदम नहीं उठाए हैं ।

## 9.7 ग्रामीण विकास हेतु कुशल प्रशिक्षण जरुरी

प्रो. एस. एन. मिश्रा के शब्दों में - चूंकि ग्रामीण विकास एक चयनित शर्त के समान है अत: ग्रामीण विकास संबंधी दृष्टिकोण और उससे जुड़ी व्यूहरचना विभिन्न देशों में विभिन्न तरह की होती है । यह उस देश के प्रबुद्ध वर्ग की विचारधारा, राजनीतिक इच्छा शक्ति, संरचना एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं पर निर्भर करती है । अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास एक व्यूहरचना की तरह है जिसका उद्देश्य सामाजिक और राजनैतिक विकास करना होता है तथा जिसका विशेष झुकाव समाज के गरीब तबके की तरफ होता है ।

जहां तक भारत में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में किए गए विभिन्न प्रयोगों का प्रश्न है, दुर्भाग्यवश हम स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से आजतक एक विरोधाभास भूल भुलैया में भटकते रहे हैं । हमारी विकास की जो प्रक्रिया रही है वह आमतौर पर एकपक्षीय रही है । जिसका झुकाव हमेशा शहरी क्षेत्रों की तरफ ही रहा है । इस विरोधाभास का प्रत्यक्ष परिणाम यह है कि जहां एक ओर समाज का एक छोटा-सा हिस्सा जेट युग में प्रवेश का गया वहीं उसका बहुत बड़ा हिस्सा आज भी मध्यकालीन जीवन-शैली के आधार पर अपना जीवन व्यतीत कर रहा है ।

भारत में ग्रामीण विकास का दूसरा दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष रहा है कि इसके लाभ से ग्रामीण समाज का बहुसंख्यक वर्ग लाभान्वित होने से वचित रहा है । लेकिन सौभाग्य से अब ग्रामीण विकास के उद्देश्य को हासिल करने के लिए प्रशासकीय एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया जा रहा है । इसका मुख्य कारण है कि स्थानीय स्तर पर विकास की गाड़ी पंचायती राज संस्थाओं एवं नौकरशाही के बल पर ही चलती है । लेकिन दोनों के बीच आपसी अविश्वास,समन्वय की कमी की समस्या और उत्साह का अभाव एक दीर्घकालीक रोग की तरह आज भी उन्हें जकड़े हुए हैं । अत: उन्हें जनता की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें कुशल एवं वैज्ञानिक प्रशिक्षण का कवच पहनाया जाए।

### 9.7.1 प्रशिक्षण क्यों?

यहां यह प्रश्न उठता है कि आखिर प्रशिक्षण क्यों? इसके उत्तर में 1996 का राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति परिपत्र कहता है कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति एवं कार्यकुशलता में वृद्धि लाने के लिए प्रशिक्षण द्वारा मानव संसाधन में व्यावसायिक ज्ञान, समझदारी और कला का विस्तार व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर लाना अति आवश्यक है । प्रशिक्षण संगठन में आने वाली चुनौतियों के प्रति कार्यकर्ताओं को उनका सामना करने के लिए तैयार करता है । लेकिन प्रशिक्षण का उद्देश्य ज्ञानार्जन के साथ-साथ उसे कारगर रूप देने की तरफ भी होना चाहिए । प्रशिक्षण का मूल मंत्र यह है कि यह प्रशिक्षणार्थियों की कार्यकुशलता एवं संगठनात्मक उद्देश्य के विस्तार के बीच समुचित समन्वय स्थापित करे । इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण के माध्यम के ऊंचे स्तर की ईमानदारी, चरित्रबल एवं सार्वजनिक जीवन में सहजता लाई जा सकती है ।

चूंकि सामाजिक और राजनैतिक वातावरण में लगातार परिवर्तन होता रहता है । अत: सरकारी तंत्र के लिए यह अति आवश्यक है कि उन परिवर्तनों से लड़ने के लिए अपने को पूर्ण रूप से तैयार करें । अत: विभिन्न स्तर पर काम करने वाले कर्मचारियों एवं जनप्रतिनिधियों को प्रशिक्षण की मूल आवश्यकता की जानकारी आवश्यक है क्योंकि इन जानकारी के बाद ही हम सभी स्तर के कर्मचारियों एवं जन-प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण हेतु एक सही पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं ।

यहां यह पुन: प्रश्न आता है कि प्रशिक्षण किस लिए एवं क्यों? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है-

(अ) लोकतांत्रिक आवश्यकताओं, जनता की आकांक्षाओं तथा संगठनात्मक एवं तकनीकी विकास के प्रति जागरुक करने के लिए,

(ब) लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता तथा निर्णय लेते समय सहभागिता के विचार को प्राथमिकता देने के लिए,

(स) तकनीकी, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के प्रति ज्ञान में वृद्धि के लिए

(द) एक वैज्ञानिक मानसिकता पैदा करने के लिए तथा

(घ) ऊंचे स्तर की व्यावसायिक उपलब्धियां हासिल करने के लिए जिसके साथ जवाबदेही भी शामिल हो, प्रशिक्षण आवश्यक है ।

### 9.7.2 प्रशिक्षण बार-बार दोहराएं

ऊपर वर्णित प्रशिक्षण के जो उद्देश्य बताए गए हैं, वे मात्र कर्मचारियों के लिए ही नहीं बल्कि हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं, ग्राम से संसद तक के प्रतिनिधियों के लिए भी हैं । यहां आवश्यकता इस बात की है कि प्रशिक्षण सिर्फ एक बार के लिए ही जरूरी नहीं है बल्कि कुछ अंतराल के बाद अवलोकन एवं मूल्यांकन के आधार पर उसे बार-बार दोहराया जाना चाहिए ताकि भविष्य में बदलती हुई परिस्थितियों के लिए जन प्रतिनिधि अपने आप को सक्षम कर सकें।

इस संदर्भ में 1996 की राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति यह कहती है कि प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य है-

1 व्यक्ति एवं संगठन की कार्यकुशलता में निरंतर वृद्धि करना तथा नए-नए व्यावसायिक ज्ञान अर्जित करना ।

2 व्यावसायिक आवश्यकताओं को समझने के लिए आपसी समझदारी एवं सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक वातावरण जिसमें उन्हें काम करना है, की सही जानकारी द्वारा अपने को तैयार करना ।

3 अपनी सोच को सही एवं सकारात्मक दिशा में निर्देशित करना ।

इन उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम को लागू करने से पहले एक खाका तैयार करना होगा जो इस प्रकार हो-

1 प्रशिक्षण की आवश्यकता का विश्लेषण - जिसमें संगठन एवं उसमें कार्यरत विभिन्न स्तर के कर्मचारियों की आवश्यकता शामिल हो

2 विश्लेषण के आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रम की सही रूप-रेखा तैयार करना

3 प्रशिक्षण संबंधी मूल संरचना की व्यवस्था करना जिसमें कि कुशल प्रशिक्षण भी शामिल है

4 प्रशिक्षण का प्रारम्भ

5 प्रशिक्षण के दौरान अवलोकन एवं प्रशिक्षण के बाद उसका आकलन

6 दो प्रशिक्षणों के बीच अंतराल का वैज्ञानिक प्रबंधन

7 प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण

8 पूरी प्रशिक्षण प्रक्रिया पर कुछ-कुछ अंतराल के बाद निगाह रखना ताकि उनमें रह गई त्रुटियों को दूर किया जा सके। ऊपर लिखित संदर्भ में जब 1992 में संविधान का 73वां संशोधन पारित हुआ तथा जन प्रतिनिधियों को ग्रामीण विकास के एक बड़े कारक के रूप में स्वीकार किया गया तो ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति की पृष्ठ भूमि में एक अपनी प्रशिक्षण नीति बनाई जिसका उद्देश्य था स्थानीय नौकरशाही तथा स्थानीय जनप्रतिनिधियों को बदलती हुई परिस्थितियों से अवगत कराना तथा भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना जिसके ग्रामीण विकास के सही लक्ष्य हासिल किया जा सके ।

### 9.7.3 शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था

इसके तहत ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक संस्थान, मंसूरी तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली को प्रशिक्षण हेतु नोडल संस्था के रूप में अपनाया । इन संस्थानों की जिम्मेदारी निर्धारित की गई कि प्रशिक्षण आवश्यकताओं का विश्लेषण करते हुए राज्य स्तर की संस्थाओं के लिए प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षक की व्यवस्था करें और ऐसे मास्टर ट्रेनर तैयार करें जो राज्य स्तर पर जाकर उन राज्यों की आवश्यकताओं के अनुसार जिला स्तर पर प्रशिक्षण तैयार करें

और इस तरह गांव से लेकर राज्य स्तर तक प्रशिक्षण का एक तंत्र तैयार हो जाए ताकि सभी कर्मी चाहे वह स्थानीय स्तर के नौकरशाह हो या जन-प्रतिनिधि, अपनी-अपनी क्षमता एवं योग्यता ये अनुसार ग्रामीण विकास के उद्देश्यों को हासिल करने में सहभागी बनें । यह व्यवस्था तीन-चार वर्षो तक इन नोडल संस्थाओं द्वारा बड़ी कुशलतापूर्वक चलाई गई । लेकिन इसका समुचित अंतरण नीचे तक नहीं हो सका, क्योंकि राज्य तथा जिला स्तर पर समुचित प्रशिक्षण मूल रचना का अभाव था और यदि प्रशिक्षण केन्द्र थे भी तो उनमें प्रशिक्षक नहीं थे । वैसी हालत में जिला स्तर के जनसेवियो को ही प्रशिक्षत किया जा सका जो कि कुछ समय के अंतराल तक इधर-उधर स्थानांतरित हो गए क्योंकि वे सभी सरकारी कर्मचारी थे और इससे पूरे प्रशिक्षण का ताना बाना ही छिन्न-भिन्न हो गया । अत: जिस पवित्र भावना के साथ यह प्रशिक्षण व्यवस्था लागू की गई वह संतोषजनक नहीं रही क्योंकि राज्य स्तर या विभिन्न संस्थाओं में प्रशिक्षण भी नहीं हो पाया जिसकी वजह से उनके अन्दर सहभागिता की भावना नहीं आ सकी। समय के साथ ही ग्रामीण विकास मंत्रालय ने भी प्रशिक्षण पर वह ध्यान नहीं दिया तो जो देना चाहिए तथा नतिजा हुआ कि विकास पर निर्धारित की गई राशि या तो खर्च नहीं हो पाई, या आशिक रूप से खर्च हुई या गलत दिशा में खर्च की गई । अत: ग्रामीण विकास की झोली में पड़े वही ढ़ाक के तीन पात ।

इस परिप्रेक्ष्य में जब हम ग्रामीण विकास का लेखा-जोखा करने बैठते है तो हम पाते है कि ग्रामीण विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति जितनी महत्वपूर्ण है उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है उसमें लगे लोगों को प्रशिक्षण किया जाना ।

### 9.7.4 प्रशिक्षण के महत्व को स्वीकार किया

यह प्रसन्नता की बात है कि अब ग्रामीण विकास से मंत्रालय पुन: प्रशिक्षण के महत्व को स्वीकार करने लगा है और इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाने के लिए सोच रहा है । यह इस बात को स्पष्ट होता है कि अभी निकट भविष्य में ही ग्रामीण विकास मंत्रालय ग्रामीण विकास के लिए प्रशिक्षण पर एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित कर रहा है । इसके लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय की सराहना करते हुए यह कहना है कि जिस तरह पंचायती राज संस्थाओं के क्रियाकलाप में बदलाव आ रहे हैं, जिस तरह से विभिन्न ग्रामीण विकास संबंधी कार्यक्रमों की पुनर्सरचना की जा रही है, स्थानीय स्तर पर योजना बनाने परा जिस तरह से नई- नई प्रबंधन तकनीकें अपनाई जा रही हैं, उन सभी जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए जब तक हम एक कुशल प्रशिक्षण नीति नहीं तैयार करते, हम अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाएंगे ।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि कर्मियों से संबंधित व्यावहारिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नई-नई प्रबन्धन तकनीक जैसे प्रोजेक्ट निर्माण क्रियान्वयन आदि के क्षेत्र में कुशल प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए । साथ ही कर्मियों के अन्दर आपस में ओहदे के अनुसार छोटे-बड़े का भेद हटाकर समानान्तर प्रशिक्षण प्रदान किया जाए, ताकि वे एक दूसरे को कठिनाइयों एवं समस्याओं को समझ सकें और भविष्य में सही तालमेल के साथ ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सफल योगदान कर सकें । चूंकि स्थानीय नौकरशाही और स्थानीय जन प्रतिनिधि एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखते हैं तथा

हमेशा एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं । अत: आवश्यकता इस बात की भी है कि इन दोनों का मिला-जुला प्रशिक्षण कार्यक्रम भी साथ-साथ चले । लेकिन इन सभी प्रकार के प्रशिक्षणों के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम प्रशिक्षकों के लिए प्रशिक्षण का फिर से ताना-बाना बुने ।

यहां यह स्थाएं हैं । वे एक दूसरे के क्रियाकलापों से अवगत नहीं है । अत: आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं में आपसी नेटवर्किंग की जाए ताकि शोध एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक दूसरे की प्रतिपूरक साबित हो सकें । फिर यह भी जरूरी है कि विभिन्न स्तर के कर्मियों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण आवश्यकताओं का विश्लेषण किया जाए तथा पूरी देश में समय एवं वातावरण के अनुसार उनके लिए अलग से प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए । पाठ्यक्रम घिसे-पिटे न होकर विकासोन्मुख हों और समय-समय पर पाठ्यक्रम में भी बदलाव किया जाए । प्रशिक्षण का ही एक हिस्सा यह भी होना चाहिए कि देश के एक क्षेत्र में जनसेवी देश के दूसरे भाग में जाकर वहां की विकास योजनाओं को देखें तथा उनकी खूबियों को अपनाने की कोशिश करें ।

अभी तक हमारी प्रशिक्षण रणनीति इस कारण भी ज्यादा सफल नहीं रही है क्योंकि हमने जो प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तैयार किए वे पूर्व निर्धारित कल्पना के आधार पर हैं, जो कि कभी भी प्रभावकारी नहीं हो सकते । अत: आवश्यकता इस बात की है कि प्रशिक्षण पाठ्यक्रम राज्यों, जिलों, खण्डों के प्रतिनिधियों एवं कर्मियों की अलग-अलग आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर तैयार किया । राष्ट्रीय स्तर पर प्रशिक्षण विशेषज्ञों की एक टीम गठित की जाए, जो कि विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं में जाकर त्वरित प्रशिक्षण का मूल्यांकन करे तथा उसमें यदि त्रुटि दिखाई पड़ती है तो उसका समाधान करने के सुझाव दें ।

### 9.7.5 प्रशिक्षण संबंधी मूलभूत संरचना उपलब्ध कराए

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि कहने को तो हर राज्य में राज्य ग्रामीण विकास संस्थाएं हैं लेकिन न तो उनमें उचित मूलभूत संरचना है न प्रशिक्षक है । अत: राज्य ग्रामीण विकास संस्थाओं को प्रशिक्षण संबंधी मूलभूत संरचना मुहैया कराई जाए तथा उनमें पूरी संख्या में प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाए । जहां तक प्रशिक्षण के प्रकारों का प्रश्न है वह विभिन्न स्तर के तथा विभिन्न तरह के कर्मियों के लिए अलग- अलग होने चाहिए साथ ही समय-समय पर उनका एक मिला-जुला प्रशिक्षण होना चाहिए ताकि वे दूसरे की समस्याओं से अवगत हो सकें और एक-दूसरे के लिए सहायक हो सकें । कम से कम त्रैमासिक अंतराल पर गांव से लेकर जिला स्तर तक के कर्मियों के समानान्तर मेलजोल संबंधी प्रशिक्षण की भी व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि यह एक ऐसा प्लेटफार्म होगा जहां पदसोपान नाम की कोई चीज नहीं होगी । ऐसे पाठ्यक्रमों में जन प्रतिनिधियों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के कर्मियों को भी शामिल किया जाना चाहिए ।

प्रशिक्षण तकनीक मात्र कक्षा व्याख्यान तक सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि इसका माध्यम काम करते हुए सीखना होना चाहिए । विकास कार्यस्थल होना चाहिए, केस स्टडी होना चाहिए । इसी तरह खण्ड और ग्रामीण स्तर पर विशेष बल नुक्कड़- नाटक, छोटी-छोटी

डाक्यूमेंटरी फिल्में, प्रदर्शनी तथा स्थानीय भाषा में मुद्रित साहित्य के माध्यम से होना चाहिए । हमने पहले भी निगाह रखने वाले तंत्र की बात कही है और यहां भी हम विशेष बल के साथ कहना चाहते हैं कि पूरे देश को विभिन्न प्रशिक्षण क्षेत्रों में बांट देना चाहिए और हर क्षेत्र के लिए अलग-अलग क्षेत्रीय मानीटीरंग समिति होनी चाहिए तथा उनके ऊपर राष्ट्रीय स्तर पर अवलोकन एवं मूल्यांकन समिति होनी चाहिए जो कि केवल प्रशिक्षण एवं प्रशिक्षण से जुड़ी समस्याओं का मूल्यांकन करे बल्कि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों का भी अवलोकन एवं मूल्यांकन करे । तभी हम सही अर्थ में ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा हमेशा की तरह संतोष करना होगा। अत: जैसे ग्रामीण विकास आवश्यक है उससे कहीं अति आवश्यक है ग्रामीण विकास से संबंधित प्रशिक्षण । ( कुरूक्षेत्र, अप्रैल, 2001 )

**बोध प्रश्न - 4**

1 पंचायती राज व्यवस्था में क्या कमियां हैं?

2 जिला नियाजन समिति की क्या स्थिति है?

3 पंचायत अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार अधिनियम 1996 में क्या प्रावधान है? यह किन-किन राज्यों में लागू है ।

## 9.8 सारांश

*प्रस्तुत इकाई में आपने ग्रामीण विकास की समस्याओं के बारे में जाना । सत्य तो यह है कि आज भी ग्रामीणों को गांवों में बुनियादी सेवाएं उपलब्ध नहीं है । ये सात बुनियादी सेवाऐं हैं - प्राथमिक सेवा उपचर्या, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास, पोषाहार सड़कें और सार्वजनिक वितरणप्रणाली को मजबूत बनाना ।*

*उम्मीद की गई थी कि पंचायतें अपने स्तर पर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाएं बनाकर एवं उन्हें लागू करके ग्रामीण विकास को जनोमुखी बनाएगी लेकिन इन्हीं संस्थाओं की अनेक समस्याएं हैं जो अन्तत: ग्रामीण विकास की समस्या बन गई है । अस्पृश्यता, जातिवाद, ऊँचनीच की भावना, महिलाओं और कमजोर वर्ग की निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति आदि समस्याएं भी व्यापक रूप से आज भी विद्यमान है ।*

## 9.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें


1. नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2००2) का मध्यावधिक मूल्यांकन, योजना आयोग, भारत
2. सरकार, नई दिल्ली, अक्टूबर 2000
3. वार्षिक रिपोर्ट, (2000-2001) ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार
4. कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका के विभिन्न इशु ।
5. राज्यों के पंचायती राज अधिनियम
6. 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम
7. पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों के लिए विस्तार) अधिनियम 1996

## 9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताएं क्या हैं? इन आवश्यकताओं की संक्षिप्त विवेचना कीजिए ।
2. भारत में भूमि संसाधन का संरक्षण एवं बंटवारा विषय पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।
3. 'रोजगार सृजन एवं गरीबी उन्मूलन ग्रामीण विकास में प्रमुख चुनौती बना हुआ है ।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. पंचायती राज से आप क्या समझते हैं? 'पंचायते अपने ही स्तर पर ग्रामीण विकास की समस्या बन गई है ।' इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

# इकाई 10 जनसंचार एवं संस्कृति

**इकाई की रूपरेखा**


10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 जनसंचार तथा संस्कृति का सम्बन्धात्मक परिप्रेक्ष्य

10.3 जनसंचार तथा संस्कृति की अन्त: क्रियात्मकता

10.3.1 प्रौद्योगिकी एवं मूल्यों का समायोजन

10.3.2 वैश्विक बिन्दुओं का आत्मसातीकरण

10.3.3 प्रभावी वैचारिक एवं कार्यकारी प्रबन्धन

10.3.4 लोकप्रिय सहभागिता

10.4 जनसंचार तथा संस्कृति के समन्वित मूलाधारों का सामाजिक प्रभाव

10.5 सारांश

10.6 निबंधात्मक प्रश्न

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 प्रयुक्त शब्दावली एवं पदों की साररूपी व्याख्या


## 10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप यह भली भांति समझ सकेंगे कि -

- जनसंचार एवं संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध क्या हैं?
- इन सम्बन्धों की क्या उपयोगिता है?
- इस उपयोगिता को और अधिक कैसे बढ़ाया जा सकता है? तथा
- इन सम्बन्धों का समाज एवं सामाजिक कार्यशैलियों पर क्या प्रभाव अंकित होता है?

## 10.1 प्रस्तावना

जनसंचार तथा संस्कृति आज एक दूसरे से अलग नहीं देखे जा सकते । जनसंचार पर आधारित पाठ, कथ्य अथवा संवाद किसी भी समाज के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है । वैश्वीकरण की प्रक्रिया में तो समर्थ समाजों का जनसंचार अब इतना प्रभावी हो गया है कि अल्प-समर्थ समाज उसकी व्यापकता का अधिकाधिक अनुभव कर रहे हैं । 'कोला-औपनिवेशीकरण' इसका एक उदाहरण है । यह कहना गलत नहीं होता कि जनसंचार से प्रेषित कथ्य एक नए जटिल और अत्यधिक सूक्ष्म 'प्रेक्षेपास्त्र' (मिसाइल्स) है जो अपनी मार से मानव मन व दिमाग को घायल करते हैं । उतनी ही सटीक वास्तविकता यह भी है कि जनसंचार की अपूर्व व्यापकता आज व्यक्ति के रुग्ण मन व विकासयुक्त जीवन शैली के उपचार की भी विपुल सम्भावनाएं संजोए हुए है । पहली वास्तविकता का प्रतिकार तथा दूसरी का

संचरण आज की एक प्रमुख सामाजिक आवश्यकता है । इस आवश्यकता को कैसे संसाधित किया जाए?

संस्कृति वह आधार है जो जनसंचार को उसका अभीष्ट सुलभ करा सकता है । ऐसा इस कारण सम्भव है क्योंकि संस्कृति से वह अन्तदृष्टि मिलती है जिसके प्रकाश में व्यक्ति 'सत्यं, शिवं सुन्दरम्' आत्मसात कर पाता है । इसी से उसकी आत्म उपलब्धि सम्भव हो सकती है । डस प्रकार सांस्कृतिक यात्रा एक अन्तर्यात्रा के रूप में 'साधारण-आत्म' को 'उत्कृष्ट आत्म' में रूपांतरित करने का महत्वपूर्ण योगदान देती है । संस्कृति से जीवन को वे परिभाषित मानक मिलते हैं जो व्यक्ति की उपापोह के तिमिर को मिटाकर उसे उसकी ' आत्म-चेतना' का आलोक प्रदान करते हैं । इसी आलोक से व्यक्ति अच्छा व्यक्ति, समुदाय अच्छा समुदाय समाज अच्छा समाज तथा विश्व अच्छा विश्व बन पाता है। उनकी यह अच्छाई वास्तव में उनकी आत्मचेतना का ही प्रतिबिम्ब है जो उनमें भले-बुरे का विवेक पैदा करती है, सदाचरण की प्रेरणा देती है और उन्हें उनके वैशेविक कर्म कौशल से युक्त करती है ।

संस्कृति-प्रदत्त, यही कर्म-कौशल किसी संचारकर्मी को कुशल संचारकर्मी बनाता है । वह कुशल इसलिए हो पाता है कि क्योंकि संस्कृति पोषित विवेक से वह अपने संचारित पाठ अथवा कथ्य को जनोपयोगी बनाकर प्रस्तुत करता है । उसका पाठ उसकी संस्कृति प्रतिबिम्बित करता है और अन्य व्यक्तियों तक पहुंचकर वह उनकी संस्कृति को सम्बोधित करता है । इस प्रकार एक दिए से जलते अनेक दिए । वास्तव में समाज के लिए संस्कृति की प्रासंगिकता का ही पर्याय है और इनमें से 'पहला दिया' सामाजिक सम्प्रेषण को प्रस्तुत किसी संचार-कर्मी की ' आत्म चेतना का दिया' ही है ।

इस इकाई में जनसंचार तथा संस्कृति विषयक ऐसे ही अनेक वैचारिक बिन्दुओं तथा उनके व्यापक प्रभावों की चर्चा की जाएगी ।

## 10.2 जनसंचार तथा संस्कृति का सम्बन्धात्मक परिप्रेक्ष्य

जन आधारित सम्प्रेषण मानवीय अन्त: क्रियाओं, आदान-प्रदान तथा सहयोगपरक चेष्टाओं के लिए अपरिहार्य है। जन सम्प्रेषण तथा संचार से मानव समुदायों की विविध स्तरीय अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति संसाधित होती है, उस संदर्भ में वाछनीय संवाद होता है और फलत: व्यवहार्य नीति-विकल्प ईजाद होते हैं । अत: जनसंचार के संदर्भ में मानव-अन्त: क्रियाओं की महत्ता निर्विवाद है ।

अन्त: क्रियाओं का यह सिलसिला कुछ बुनियादी सवालों से शुरू होता है । हम कैसा जनसंचार अभिनिर्मित करना चाहते हैं? उसका किस प्रकार परिचालन और प्रयोग करना चाहते हैं? क्या इस प्रयोग में नीति और सौंदर्यबोध के किसी ताने-बाने का कहीं कोई सरोकार है? क्या हमारा जनसंचार उपयोगितावादी संवर्द्धनशील रणनीतियों की ही तो पैरवी नहीं करता?

इन समस्त सवालों के जवाब संस्कृति की परिधि में प्रकट होते हैं । संस्कृति से जीवन-दर्शन निखरता है । जीवन दर्शन से अलोकित जन- आवश्यकताएं वांछित और वांछनीय ( डिजाएर्ड और डिजाइरेबिल) में फर्क करने का सलीका पाती है । ऐसी विवेकी आवश्यकताओं का

अनुशीलन करने वाला जनसंचार संस्कृति-निरपेक्ष हो ही नहीं सकता । आधुनिक इतिहास से प्रकट विविध उदाहरण इस तथ्य की पर्याप्त पुष्टि करते हैं ।

मथ्यु आर्नल्ड नें माध्य-विक्टोरियाई इंग्लैण्ड की प्रवृत्तियों की समीक्षा के दौरान उन्हें 'यांत्रिकता में विश्वास' से ग्रस्त पाया - उनका सरोकार सभ्यता की केवल यांत्रिक तथा बाह्य स्थितियों से ही था । आर्नल्ड के अनुसार तल्कालीन इंग्लेण्ड 'साधारण आत्म' से अभिप्रेरित होकर केवल उस स्वतंत्रता का पक्षधर था जिसके वशीभूत होकर लोग केवल कुछ कहने और करने की स्वतंत्रता का वरण करने को ही उद्यत थे । उन्हें उसके अनुसार न तो पूर्णता का बोध था और न ही उसके संसाधन की कोई महती इच्छा जो कि संस्कृति सुलभ कराती है । संस्कृति के परिष्कार से अछूते तत्कालीन इंग्लैण्ड में कुलीनतंत्र आर्नल्ड के अनुसार 'बर्बर' था- निष्ठा तथा विनम्रता में प्रबल परन्तु बौद्धिकता तथा 'आलोक' की दृष्टि से नितान्त दुर्बल । तत्कालीन मध्यवर्ग भी उसके आकलन में निंदनीय था क्योंकि वह असंवेदनशील होते हुए अपनी दृष्टि में नितान्त आत्म-केन्द्रित आत्म-परितोषी, सीमित तथा 'फिलिस्तीनी' था । साधारण जन अपने- अपने स्तरों पर अपरिष्कृत तथा 'दृष्टिहीन' थे । संस्कृति से वियोग का यह उदाहरण किसी सारगर्भित सामाजिक सम्प्रेषण का संकेत नहीं देता ।

जनसंचार-संस्कृति सम्बन्धों के तीन नियामक प्रसंग रूपों में हम मार्क्सवाद, संरचनावाद तथा उत्तर- आधुनिकता की कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे ।

मार्क्सवाद सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानकों की वर्ग-चेतना व वर्गीय संगठन व तत्परिणामी रूपांतरण क्रम में संकल्पना करता है । पियरे बॉरद्यू के अनुसार सौन्दर्यशास्त्र का सामाजिक कार्य यह है कि वह वर्ग-आधारित तथा संस्कृति-वैशेषिक पसन्द भेदों की सार्वभौमिक और इस आधार पर प्राकृतिक करार देता है । उसकी विषय-वस्तु 'सांस्कृतिक-पूंजी' के ऐसे विषम भेदी अधिग्रहण का संकेत देती है जो आर्थिक स्थिति वसामाजिक दर्जे द्वारा निर्धारित होते हैं । सौन्दर्यशास्त्रीय समस्त अधिनिर्णय बॉरद्यू के आकलन में कुछ विशेषाधिकारों को पुनर्प्रस्तुत करते हैं जो अनिवार्यत: परिवार व शैक्षिक पर्यावरण के माध्यम से अचेतन रूप से विरासत प्राप्त 'सांस्कृतिक पूंजी' के रूप में प्राप्त होते हैं ।

जनसंचार अध्ययनों की दृष्टि से एक प्रभावी अवधारणा एन्टोनिओ ग्रामस्की ने प्रस्तुत की जो 'हेजेमनी' की अवधारणा के रूप में जानी जाती है । यह प्रभुत्व अथवा आधिपत्य जनसंचार की विधाओं (यथा समाचार वृत्तचित्र, सामयिक चर्चा) को प्रचारवादी व्यंजनाओं से प्रतीत होता है और समाज का प्रभुता सम्पन्न वर्ग अपने नियंत्रण को बरकरार रखने के लिए इनका सतत् प्रयोग एवं परिवर्तन करता है । ग्रामस्की की दृष्टि में संस्कृति यद्यपि मार्क्सवादी आर्थिक नियतिवाद की कैद से तो विमुक्त प्रकट होती है परन्तु उसका सरोकार सामाजिक नियंत्रण व वर्ग-आधारित कार्यवाही के विस्तार में हों निहित है । इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए थिओडोर एड़ॉर्नो ने यह संकल्पना विकसित की कि शक्ति वस्तुत: संस्कृति उद्योग तथा उसकी जुड़वां प्रक्रियाओं का मानवीकरण तथा 'छद्म-वैयक्तकिरण' में निहित है । इस स्थिति में मौलिकता तथा बौद्धिक संवेग सांस्कृतिक उत्पादन के अर्थशास्त्र में विरोहित हो जाते है । सांस्कृतिक उद्योग की सामर्थ्य इस प्रभावी प्रवृत्ति पर आधारित है कि उससे निर्भर निष्क्रिय

तथा सेवाभावी उपभोक्ताओं का ऐसा प्रगति-विरोधी या प्रतिगामी संवर्ग पैदा होता है जो शिशुओं का सा बर्ताव करता है ।

संरचनावाद की धारणाओं में सांस्कृतिक घटनाएं एवं प्रवृत्तियों विशुद्ध रूप से सम्बन्धात्मक निर्मितियां हैं जिन्हें उनका अभिज्ञान व अर्थ कुछ सुनिश्चित संकेतों, कोड़ों तथा नियमों से प्राप्त होता है । ये ऐसे संकेत, कोड व नियम हैं जो प्रत्येक व्यक्ति किसी देय सामाजिक परिवेश से अचेतन ग्रहण करता है और उनसे ऐसी व्यक्तिपरक व्याख्याएं संरचित होती है जो कार्य- कारणत्व निर्धारित करती है । संरचनावाद इस कारण ऐसी संचनाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण पर बल देता है क्योंकि उनके माध्यम से ही पाठक अथवा दर्शक विविध सांस्कृतिक विधाओं जैसे दूरदर्शन कार्यक्रमों को डी-कोड़ करने उनका अर्थ-रहस्य ग्रहण करने में समर्थ हो पाता है । संरचनावाद दर्शक अथवा पाठक का अनिवार्यत: नियतिवादी दृष्टिकोण मुखरित करता है । संरचनावाद समाजशास्त्र तथा भाषा विज्ञान के मिश्रित ज्ञान रूपों से लैस होकर सांस्कृतिक वस्तुओं के अर्थ-भेद को उद्यत हुआ । संस्कृति के क्षेत्र में संरचनावादी अध्ययनों में आर. बार्थेस तथा वे कुलर के नाम विशेष उल्लेखनीय है जबकि संरचनावाद की समलोचना की दृष्टि से जे मर्किअर अग्रणी हैं ।

उत्तर-आधुनिकता एक ऐसे संसार को निरुपित करती है जहां सूचना-प्रौद्योगिकी का पदार्पण हो चुका है और दुनियां संचार-संसाधनों से पूर्णत: संतृप्त प्रकट होती है । इस सांसारिक परिवेश में यथार्थ अनुकृति प्रकट होता है, उच्च संवेगी यथार्थ ने यथार्थ की जगह ले ली है तथा सार्वजनिक व निजी 'स्पेसेस' गौण-प्राय: हो चले हैं । मीडिया अध्ययनों में दि सरट्यू का नाम उल्लेखनीय है । दैनंदिन जीवन- व्यवहारों तथा अनुभवों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए दि सरट्यू ने यह दर्शाया कि किस प्रकार उपभोक्तावाद से आक्रान्तमीडिया उत्पादों ने 'गुरिल्ला रणशैलियों' को अंगीकार किया है । आज के संदर्भ में टेलिविजन- संस्कृति ने 'सेमिओटिक डेमोक्रसी' का स्थान ले लिया है । सारतः उत्तर-आधुनिकता पाठ के लेखक अथवा रचनाकार का निषेध करती है और पाठक दर्शक की व्याख्याओं एवं अर्थ-ग्रहण क्रिया का सशक्तिकरण करती है, उसकी मान्यता में पाठ में सभी विन्यास प्रघटनाए आदि सम्मिलित है । जैसे विज्ञापन, लोकप्रिय संगीत आदि । उत्तर आधुनिकता 'जन-वाणी' के पक्ष में 'विशेषज्ञ-स्वरों' पर सवालिया निशाल लगाती है । उसकी दृष्टि से कोई ऐसा स्वतंत्र या आत्म-निर्भर मापदण्ड नहीं है जिसके आधार पर कला को लोक-संस्कृति से पृथक करके देखा जाए । ऐसी स्थिति में उत्तर-आधुनिक दुनियां संस्कृति को विशुद्ध सम्बन्धात्मक तत्त्वों से अभिनिर्मित एक ' अनियमनीय व्यापार' मानती है । उसकी दृष्टि में कोई ऐसा 'पाठ' नहीं जो अपना कथनीय अर्थ प्रकट करने में सक्षम हो । उसकी अर्थवत्ता तो पाठकों की दयानतदारी व समझ पर निर्भर है । ऐसी स्थिति में टेलिविजन देखते समुदाय स्वयमेव कार्यक्रम के अर्थ का निर्माण करते हैं और लेखक का मंतव्य नितान्त पिछवाड़े हो जाता है । यह अर्थवत्ता किसी एक विशिष्ट कोड पर आश्रित नहीं वरन् कोड़ों की तात्कालिक बहुलता पर अवलम्बित होती है ।

इस चर्चा की समाप्ति से पूर्व यहां भारतीय संदर्भ का उल्लेख भी प्रासंगिक होगा । भारत में जनसंचार एवं संस्कृति के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ व सहयोग परक रहे हैं । इन

सम्बन्धों को मानवीय आधार उस सतत् सांस्कृतिक चेतना से उपलब्ध हुआ है जिसका सशस्वी प्रतिनिधित्व बुद्ध व विवेकानन्द करते हैं । बुद्ध का यह प्रगाढ़ विश्वास था कि 'जीवन में ऐसा कुछ नहीं जिससे उबरा न जा सके । व्यक्ति स्नेह का करूणा से क्रोध का अतिक्रमण करे और भलाई द्वारा बुराई से ऊपर हो' । इसी स्वर का विस्तार करते हुए आधुनिक भारत में विवेकानन्द ने यह स्पष्ट मत व्यक्त किया है 'जीते तो केवल वो है । जो दूसरे के लिए जीते है। बाकी तो सब मुर्दो से भी बदतर हैं । ' ये दोनों सूत्र व्यापक जीवन शैली के साथ जनसंचार को भी अनुप्राणित करते हैं।

जनसम्पर्क एवं जनसंचार के एतिहासिक साक्ष्य वैसे तो मौर्यकालीन इतिहास से पर्याप्त समर्थित हैं परन्तु मुगल मराठा काल में तो उनकी विषय वस्तु तथा क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक व उच्चारित थे । मुगल दरबार विषयक इस व्यापार का विस्तृत वृत्तान्त भीमसेन सक्सेना की तारीखे दिलखुशा में संग्रहीत हैं । शिवाजी की स्वराज्य प्रणाली में लोकहितकारी जनसंवर्द्धन तत्त्व इतने मुखरित थे कि उसका समेकित आकलन करते हुए सत रामदास ने शिवाजी के शासन को 'आनन्दवन भुवन' की संज्ञा दी । सांस्कृतिक सम्प्रेषण शिवाजी के राज्य प्रबन्ध का मूलाधार था । उस काल की कृतियां जैसे 'शिव कौन्डेय'. 'कारण कौस्तुभ' तथा 'राज्यव्यवहार कोश' जीवन के सांस्कृतिक पक्षों को पर्याप्तत: समर्पित थीं । सम्प्रेषण की विविध विधाएं प्रचलन में थीं - यथा मौखिक सम्प्रेषण पत्र, नाट्य शैलियां व काव्य, संतों का जन साधारण से संवाद आदि ।

यह मात्र संयोग ही नहीं था कि लोकमान्य तिलक की लोकमान्यता पत्रकारिता के अनेक विशद अनुभव का प्रतिफल थी । आधुनिक भारत में 'मराठा' व 'केसरी तिलक' के उस जनवादी आग्रहों का मूलाधार बने तो उन्होंने जनमानस के लिए संयोजित किया । महाराष्ट्र के अनेक गणमान्य व्यक्ति संस्कृति आधारित इसी जनसंचार को समर्पित थे । इनमें महादेव बल्लाल नामजोशी, बी. जी. जाम्भेकर, बालशाखी, भाऊ महाजन, तुकाराम नाथोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, चिपलंकर, डी. वी. पोद्दार, एन. आर. पाठक, राव साहब विश्वनाथ माण्डलिक, कृष्णराव बार्लेकर तथा जी. जी. आगरकर के नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संस्कृति प्रवृत्त इसी जनसंचार के समाज सेवा पत्रकारिता में ढ़ालने का अति महत्वपूर्ण योगदान दिया । उनकी पत्रकारिता में सामाजिक अन्याय का प्रतिकार तथा सामाजिक समानता का यथेष्ट प्रवर्तन विद्यमान था। उनकी दृष्टि में प्रेस सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम था । उनकी पत्रकारिता से ही दलित साहित्य का कालांतर में अभ्यूदय हुआ । दलित साहित्य से दलित सांस्कृतिक चेतना का अपूर्व संचार संभव हो सका । समाज सुधार, समानता, व्यक्ति- स्वातंव्य सरीखे सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के फलस्वरूप ही महाराष्ट्र में विकास पत्रकारिता का सूत्रपात हुआ । कृषि औद्योगिक विकास, सांस्कृतिक विरासतों का अनुरक्षण आदि ऐसे विषय थे जो स्वातंत्रयोत्तर भारत में मराठा क्षेत्रीय पत्रकारिता को अभिनव आयाम उपलब्ध करा सके ।

आज आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के अति- व्यापक प्रसार-तंत्र ने भारत में लोक संस्कृति तथा जनसंस्कृति के व्यवहार्य प्रतिमान प्रस्तुत किए हैं । रेडियों तथा दूरदर्शन ' जनजीवन के

दर्पण' बन कर प्रकट हुए हैं । इस दर्पण पर आज वैश्वीकरण की प्रेत- छाया भी प्रतिबिम्बित होती है और उपभोक्तावाद से प्रभृत विज्ञापन जन-प्रतिबिम्ब को अस्पष्ट व विकृत भी करते हैं । परन्तु व्यवहार्य सांस्कृतिक चेतना इस विकृति को प्राय: प्रति-संतुलित भी करती रहती है । आज आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों व प्रतिमानों से राष्ट्रेतर जीवन शैलियों का व्यवहार्य समावेश हो। इन नवीन शैलियों में पाश्चात्य तथा अफ्रीकी एशियाई जीवन शैलियां तथा स्वयं दक्षिण एशियाकी अपेक्षाकृत परिचित जीवन- शैलियां बाकायदा शामिल हैं ।

## 10.3 जनसंचार तथा संस्कृति की अन्त: क्रियात्मकता

पिछले खण्ड में आपने यह भली भांति समझा की जनसंचार तथा संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । भारत तथा समूचे विश्व में जनसंचार तथा संस्कृति का सम्मिलित लोकाचार यथेष्ट प्रवर्तित रहा है । उसने जनजीवन के प्राय: समस्त पक्षों को अपनी परिधि में सुरक्षित रखा है । इस कारण इस खण्ड में दोनों की परस्पर व्यापी अन्त: क्रियाओं पर एक दृष्टिपात आवश्यक है । इस खण्ड में इसी विषय पर चर्चा की जाएगी।

### 10.3.1 प्रौद्योगिकी एवं ख्तों का समायोजन

प्रौद्योगिकी एक साधन है जिसके बलबूते व्यापक जनसंचार सुलभ हो सकता है । आज की दुनिया में तो सूचना प्रौद्योगिकी दैनंदिन जीवन में अपनी उपयोगिता सतत् सिद्ध कर रहीं है । रेडिया, टी. वी. टेलिफोन तो पुरानी बात हो चले । नया जामना तो कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलि-कॉन्फ्रेसिंग, ई-मेल, फैक्स इत्यादी का है । टी. वी. सघन केबल नेटवर्क के जरिए आज दूरदराज तक फैल गया है और घर बैठे व्यक्ति 60 से लेकर 100 टी. वी. चैनल तक एक साथ देख सकता है । वास्तव में सूचना- प्रौद्योगिकी ने जनसंचार के क्षेत्र में अपूर्व क्रांति ला दी है । विश्व के किसी भी भाग में घटी कोई घटना लगभग पलक झपकते ही दुनियां का समाचार बन जाती है । अमेरिका के विश्व व्यापार केन्द्र पर आतंकवादी हमला और उसके भग्नावशेष समूची दुनियां के लिए घर बैठे दर्शनीय हो जाते हैं । सूचना प्रोद्योगिकी ने ओसामा-बिन-लादेन को सर्व-परिचित बना दिया है, राजनयके क्षेत्र में नेताओं के बनते-बिगड़ते भाव अब 'शरीर- भाषा' के विविध विन्यास पैदा कर रहे हैं ।

बुनियादी सवाल यह है कि क्या सूचना-प्रौद्योगिकी बेलगाम रहे? क्या वह साधन न रहकर साध्य का दर्जा पाले? क्या प्रौद्योगिकी को मर्यादित- अनुशासित करना आज की महती आवश्यकता नहीं है? इन सवालों से निर्णायक संगति अत्यावश्यक है अन्यथा प्रौद्योगिकी उत्पन्न प्रत्येक विधा 'अपराधी' बन चलेगी, उसका व्यापार अनैतिक-आपराधिक मनोवृत्तियां सघन कर देगा जैसा कि ' साइबर-क्राइम' के रूप में आप सभी के सम्मुख प्रकट व सुपरिचित हैं।

महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि संस्कृति की मूल्य व्यवस्था से प्रौद्योगिकी संचालित हो । उसी से उसको उसकी प्रामाणिक सोद्धेश्यता उपलब्ध हो सकती है । संस्कृति प्रौद्योगिकी को 'सामाजिक श्रेयस' (सोशल गुड) से अनुप्राणित और यह श्रेयश यह निर्धारित करेगा की (1)

प्रौद्योगिकी का प्रयोग जीवन-शैलियों और परम्पराओं का सतत निर्वाह करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों व मानकों को वैयक्तिक सामाजिक जीवन में अक्षुण्ण रखेगा तथा (2) ऐसे जनसंचार उपयोग के दौरान व्यक्तियों की अस्मिता का कोई भी प्रभुताशाली वर्ग हनन नहीं कर सकेगा । सब सहिष्णुता तथा सौहार्द से आबद्ध होंगे ।

### 10.3.2 वैश्विक बिन्दुओं का आत्मसातीकरण

भारतीय मनीषा तो व्यक्ति और समष्टि का सम्यक् परिपालन करती है । मनीषी सदैव ओस की बूंद में सूर्य का समग्र- दर्शन करते आए हैं और इस क्रम में उनकी आंख स्वयं सूर्य का तेज पा लेती है । आज आवश्यकता यह है कि विश्व-प्रसंगों को जन- साधारण हृदयंगम करे । विकास, अन्तर्निर्भरता, न्याय, स्वायत्तता, अहिंसा और इन सबसे ऊपर स्वयं व्यक्ति की अन्तर्निहित गरिमा के सांस्कृतिक मूल्य, वैयक्तिक- सामाजिक राष्ट्रीय स्तरों पर प्रतिष्ठित हों और वे राष्ट्रीय नीति- विकल्प बनो केवल इन्हीं मूल्यों से राष्ट्रेतर, क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय जीवन अपनी लुप्त प्राय: प्रासंगिकता व अर्थवत्ता पा सकते हैं । यदि ऐसा नहीं हुआ तो दमन, प्रभुता, हिंसा, युद्ध व तिरस्कार के स्तर ही कर्णकटु चीत्कार करते रहेंगे और ' हमारी एकमात्र पृथ्वी' पर नरक का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा । उपभोक्तावाद व बेलगाम विकास-कर्म विषमताएं और विसंगतियों को ही विस्तार देगा । अतएवं यह आवश्यक है कि प्रौद्योगिकी का भारी तत्र हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को पल्लवित करे, वह स्वयं अपना ही विस्तार न करता रहे । हम प्रबुद्ध व्यक्ति की भांति विश्व-प्रसंगों एवं प्रक्रियाओं से जुड़े और अपना वांछनीय विस्तार करें । 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' और उससे प्रकट विसंगतियुक्त विकास हमारा अभीष्ट नहीं हो सकता । हमे जनसंचार के माध्यम से अन्तसांस्कृतिक सम्प्रेषण प्रकार सम्भव करने ही होंगे ताकि हम संस्कृतियों को सार्वभौम तत्वों से यथेष्ट अन्तरंग हो सकें । हमें विरोधाभासी परिप्रेक्ष्यों का अतिक्रमण करते हुए उनके पास रचे- बसे एकताकारी सूत्रों का संयोजन करना होगा । सच्चा वैश्वीकरण इसी संधान पर निर्भर है । सांस्कृतिक सापेक्षता एक सच्चाई है परन्तु वह केवल 'अर्द्ध-सत्य' है । पूर्ण सत्य है सांस्कृतिक सार्वदेशिकता और उससे प्रकट वैश्विक चेतना की सही पहचान ।

### 10.3.3 प्रभावी वैचारिक एवं कार्यकारी प्रबन्धन

प्रासंगिक विचारों से प्रासंगिक आचरण प्रस्कुटित होता है । मनन और कर्म अविच्छिन्न हैं । उनका युग्म ही जीवन को कुशलतापूर्वक परिचालित करता है । अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि वैश्वीकरण के संसाधन की प्रबन्ध शैलियां ईजाद हों । साधनात्मक फलो के रूप में हमारे लिए आवश्यक होगा कि हम जनसंचार के माध्यमों द्वारा नई मूल्य व्यवस्थाएं सुदृढ़ करें । युद्ध के स्थान पर अहिंसा और पूर्ण निःशखीकरण हो, प्रभुता की जगह सहिष्णुता ले, आत्म-केन्द्रित समस्त व्यापार सहयोग व अन्तर्निभरता विकसित करें तथा सहिष्णुता व प्रेम से व्यक्ति समाज और राज्य के लिए हैं, उसी प्रकार समाज और राज्य अपने से बड़ी इकाइयों का हित- साधन करें ( यथा क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताएं), ये नई मूल्य व्यवस्थाएं जनसंचार के प्रयोग को भी नया सिलसिला दें । संचार-विधाओं जैसे समाचारों, टी. वी. प्रसारणों, संगीत.

फिल्म आदि की राष्ट्र के भीतर व क्षेत्रीय- अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर विविध सांस्कृतिक पारिप्रेक्ष्यों में सघन समीक्षा हो । इस समीक्षा से संस्कृति की विषयगतता पर अंकुश लगेगा और उसकी सार्वदेशिकता पर्याप्त विस्तार पा सकेगी । ऐसे प्रबन्धन से जीवन बेहतर जीवन बन सकेगा और सामाजिक श्रेयस मूर्तरूप उपलब्ध कर सकेगा ।

### 10.3.4 लोकप्रियता सहभागिता

यदि पृथ्वी एक होगी, व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ेगा, संस्कृतियां अन्तनिर्भर होंगी, सहयोग तथा सहिष्णुता के स्थायी भाव फले- फूलेंगे, राजनीति 'मानवीय' होगी तो दुनियां के कारोबार से सब व्यक्ति अपने-अपने क्रम में अपने- अपने स्तर पर अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दे सकेंगे । विभेदीकरण के भाव एकीकरण के पार्श्व में चले जाएंगे तथा ' अनेकता में एकता' प्रतिबींम्बित होगी । कला और संचार-विधाएं मानव जीवन की अनुगामी होगी । वे व्यक्ति का साधन- रूपी उपभोग नहीं करेंगी । जीवन के इस वैकल्पिक प्रतिमान में व्यक्ति ' औचित्य के संकट' से उबरेगा और व्यवस्थाओं के प्रति उसकी आस्था एवं लगाव के स्वर उच्चारित होंगे । जीवन कलापूर्ण होगा और कला सत्यतः जीवन्त और सतत स्पन्दित । व्यक्ति का हर कृत्य वैभवशाली तथा सौन्दर्य-बोध से युक्त होगा ।जीवन के इस वैकल्पिक विन्यास के लिए जनसंचार कों प्रभावी भूमिका का निर्वाह करना होगा ।

## 10.4 जनसंचार तथा संस्कृति के समन्वित मूलधारों का सामाजिक प्रभाव

इस इकाई की अब तक की चर्चा से आप यह भलीभांति समझ चुके होंगे की संस्कृति और जनसंचार मिलकर व्यक्ति और समाज का सकल रूपांतरण करने में समर्थ हैं । इन दोनों की पारस्परिकता से सामाजिक-राजनैतिक तथा वैयक्तिक परिवर्तन चरितार्थ होते हैं ।

एल. रिप्ले. स्मिथ ने अपने हाल के एक अध्ययन में यह मत प्रतिपादित किया है कि जनसंचार का उच्च आदर्शवादी तथा भविष्योन्मुखी उपयोग नए वैश्विक अभिमुखीकरण प्रस्तुत करने की दिशा में निर्णायक सिद्ध हो सकता है । उसके अनुसार आवश्यकता इस बात की है कि समाजेत्तर सहयोग बड़े, संस्कृतियों के आर-पार समन्वय सुलभ हो तथा पर्यावरणीय अन्तनिर्भरत को संस्थीकृत किया जाए । इन सबके लिए व्यवहार्य मिडिया-नेटवर्किंग अपरिहार्य है । उसने इस मीडिया की एक मॉडल आउटलाइन (आदर्श रेखांकन) प्रस्तुत किया है जो यहां आपकी जानकारी के लिए दिया जा रहा है-

**स्मिथ की मीडिया नेटवर्किंग का आदर्श निरूपण**

**अनुमान**

1. पर्यावरण, संसाधन तथा उनके प्रतिमानित प्रवाहों के परिभाषीकरण तथा परिचालन के क्रम में किसी सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था का अभ्युदय होता है ।
2. किसी समान सामाजिक तथा जैविक-भौतिकीय पर्यावरण में अपनी सहभागिता के अनुपात-क्रम में समाज पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए अन्तनिर्भरता का सुत्रपात करते हैं ।

**सैद्धान्तिक निर्मितियां**

1. मीडिया अनुभागी चेतना का विकास ताकि - अनुभव के आधार पर समानुभूति प्रकट हो सके ।
2. प्रतीकों एवं अर्थो की सहभागिता के साधन रूप में नेटवर्क की पारस्परिक आवृत्तियां ।
3. नेटवर्क संगठन व अन्त: क्रिया के साधन रूप में सहयोगी नेटवर्क क्रियाकलाप ।
4. सहयोग के विकास के लिए समानुभूति ।

**संकलंपनाएं एवं प्रासंगिक प्रतिपादन**

1. मध्यस्थता पर आधारित चेतन- उन्नयन से सांस्कृतिक अर्थवत्ता घनीभूत होती है और इस आवश्यकता की प्रतिपूर्ति से सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों का अन्तर्सांस्कृतिक प्रबन्धन सुलभ होता है ।
2. सांस्कृतिक- सामाजिक परिवर्तनों के अन्तसांस्कृतिक प्रबन्धन के लिए दीर्घकालिक एवं स्थायी एकीकृत नेटवर्किंग रणनीति अपरिहार्य है ।
3. सामाजिक- सांस्कृतिक परिवर्तन के अन्तसांस्कृतिक प्रबन्धन के लिए समष्टि स्तर पर समतावाद तथा व्यष्टि स्तर पर स्वायत्तता आवश्यक है ताकि प्रक्रिया में समन्वय व कार्य सक्षमता व्यास हो सके ।

स्मिथ का यह मत है कि मीडिया नेटवर्किंग का यह प्रतिमान सहयोगी हो न कि स्पध्दार्प्रक । ऐसी नेटवर्किंग से नए समाजीकरण विषयक मनोभाव व कार्यकारी सम्बन्ध प्रकट होगें जो व्यवस्था सम्बन्धी वांछनीय आउटपुट दे सकेगें और जिनके चलते पर्यावरण भी सकारात्मक रूप दशा अर्जित कर सकेगा । इन समस्त क्रियाकलापों के फलस्वरूप वैश्विक समाज निर्माण के लिए अपरिहार्य जीवन चेतना सृजित होगी जो अन्तनिर्भरता व सहभागिता का व्यवहार्य नियमन कर सकेगी ।

वास्तव में किसी भी अन्तनिर्भर समाज को अपनी क्रियाशीलता के लिए ऐसी अभिनव भूमिकाओं, विचारधाराओं की आवश्यकता होती है जो, डेनियल लर्नर के शब्दों में, 'वैयक्तिक मूल्यों का सार्वजनिक मुद्दों से तादात्म्य' स्थापित कर सकें और जिनके आलोक में वह समाज 'सहमती' द्वारा संचालित होते हुए 'उच्च समानुभूति की क्षमता' प्रकट करे ताकि 'वैयक्तिक मांगों को संस्थात्मक आपूर्ति' से संगत किया जाए और सच्चे 'विश्व लोकमत' का संसाधन हो सके । जनसंचार और संस्कृति के समन्वय से इस आदर्श को यथार्थ रूप दिया जा सकता है ।

भारत सरीखे विकासशील समाज में तो ऐसा समन्वय और अधिक उपयोगी है । यह प्रसन्नता व सराहना योग्य है कि संस्कृति व जनसंचार ने मिलकर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के 'मिशन' को लोकप्रिय बनाना शुरू किया है । इसी प्रकार, स्वास्थ्य कल्याण कार्यक्रम तथा एड्स निवारण कार्यक्रम का व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है । 'गोली के हमजोली' तथा ' आओ साक्षर बनाएं' जैसे जनसंचारी आग्रह जन-शिक्षा व तदनुकूल आचरण के लिए अपरिहार्य है। इसी प्रकार, उपभोक्ता संरक्षण, केरियर परामर्श, महिला विकास आदि ऐसे सार्वजनिक मुद्दे हैं जिन पर और अधिक ध्यान दिया जा सकता है । स्वस्थ मानसिकता से स्वस्थ व्यक्ति बनता है और स्वस्थ व्यक्तियों की सहयोग परक क्रियाओं से स्वस्थ समाज की रचना होती है ।

विश्व-समाज इस निर्माण-प्रक्रिया का अपवाद नहीं हो सकता । अतएव, जनसंचार एवं संस्कृति को इस दिशा में समन्वित क्रियाकलाप तो सतत् संयोजित करने ही होंगे ।

## 10.5 सरांश

*इस इकाई में आपने जनसंचार एवं संस्कृति के परस्पर नियोजित क्रियाकलापों की सार्थकता का अनुभव किया? संस्कृति जनसंचार को निर्देशित करती है और जनसंचार इस निर्देश का यथेष्ट अनुपालन । यह सही भी है क्योंकि मूल्य- बोध व मूल्य- प्रसारण सांस्कृतिक सम्पन्नता से ही सम्भव हो सकता है । जनसंचार तो इन क्रिया-कलापों को मात्र यांत्रिक सहायता ही उपलब्ध करा सकता है ।*

*जनसंचार मानव अंत: क्रियाओं का प्रतिफल होता है । सार्थक अन्त: क्रियाएं सोद्देश्यात्मक जनसंचार प्रस्तुत करती है । यह सोद्देश्यात्मकता 'वांछित और वांछनीय' की सांस्कृतिक चेतना पर निर्भर है । इतिहास इस तथ्य का निर्णायक प्रतिपादन करता आया है कि संस्कृति-सम्पन्न जनसंचार सामाजिक उन्नयन का वाहक है । प्रतिकात्मक जटिलताए विषय सामाजिक उन्नयन प्रकट करती आई हैं । सार्थक अन्त: क्रियाएं वैश्विक समाज की जटिलताओं का भी संसाधन कर सकती हैं । आवश्यकता इस बात की है कि समाजेतर सहयोग बड़े और दृष्टि उत्पादक भविष्योन्मुखी हो? इसके लिए जरूरी है कि आज वैयक्तिक मूल्य 'विश्क लोकमत' के निर्माण को समर्पित हो वैयक्तिक मांगों को संस्थात्मक आपूर्ति से संगत किया जाए, तथा सच्चे सार्वजनिक मुद्दे प्रभावी रूप से सम्बोधित हो । संस्कृति से युक्त मीडिया नेटवर्किंग ऐसा कर सकती है*

## 10.6 निबंधात्मक प्रश्न

1. जनसंचार तथा संस्कृति का सम्बन्धात्मक पीखेक्ष्य क्या और कैसा है? विवेचना कीजिए ।
2. जनसंचार और संस्कृति की अन्त: क्रियात्मकता पर एक निबन्ध लिखिए ।
3. जनसंचार तथा संस्कृति के समन्वित मूलाधार क्या सामाजिक प्रभाव प्रस्तुत कर सकते हैं?
4. स्पष्ट कीजिए ।
5. रिप्ले स्मिथ का मीडिया नेटवर्किंग विषयक आदर्श रेखांकन प्रतिपादित कीजिए ।
6. भारतीय संदर्भ में संस्कृति व जनसंचार के ऐतिहासिक व समसामयिक साक्ष्य तथा उनके
7. प्रभावों की चर्चा कीजिए।

## 10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें


1. फेलिप कोरजेनी व स्टेला टिंग-टूमी (सं.) - मास मीडिया इफेक्ट्स अक्रास कल्चर्स (1992)
2. केनेथ डायसन व वॉल्टर होमोल्का (सं.) कल्वर फर्स्ट प्रमोटिंग स्टेन्डर्डस इन दि न्यूमीडिया एज ( 1996 )
3. विजय धारुरर - पर्सपेक्टिव्स इन मास कम्यूनिकेशन एण्ड कल्चर (1986)
4. आर. वोल्टी - सोसाइटी एण्ड टेक्मोलॉजिकल चेंज ( 1988 )
5. हैन्डबुक ऑफ इन्टरनेशनल एण्ड इंटर -कल्चरल कम्यूनिकेशन (1989 )

6. मेरिल व ओडेल - ग्लोबल जर्नलिज्म ( 1983 )
7. मेरिक व ओडल - फिलॉसफी एण्ड जर्नलिस्म (1983)
8. अल्बरेक्ट व ऐडेलमेन - कम्मुनेटिंग सोशल सपोर्ट (1987)

## 10.8 प्रयुक्त शब्दावली एवं पदों की साररूपी व्याख्या

**कोला-औपनिवेशीकरण** : शब्दात्मक अर्थों में विश्व-अर्थव्यवस्था पर कोका कोला का बहुराष्ट्रीय प्रभाव और उसके द्वारा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्थाओं पर आत्म-संवर्द्धनकारी तथा औपनिवेशिक हेजेमनी ।

**सत्य-शिव सुन्दरम्** : एक भारतीय त्रि-वैचारिक प्रतिपान जो सत्य को शिव और शिव को ही सुन्दर मानता है।

**वांछित और वांछनीय** : भारतीय मूल्य- व्यवस्था का एक, सशक्त वैचारिक आग्रह जो 'चाहे गए' और 'चाहने योग्य' में विवेकी भेद करता है और वांछनीय को वरेण्य प्रतिपादित करता है ।

**सांस्कृतिक पूंजी** : एक मार्क्सवादी संकल्पना जो भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य में उसे आर्थिक व सामाजिक दर्जे का प्रतिफल मानती है जिसके स्पष्ट आर्थिक- भौतिक मंतव्य निहित है ।

**छद्म-वैयक्तकिरण** : एक ऐसा भाव जो वयक्ति को व्यक्ति जाने-समझे बगैर उसकी सत्ता के वैशेषिक तत्व निर्धारित करे और व्यक्ति ' जो नहीं है' उसे वैसा करार दे ।

**सेमिओटिक डेमोक्रेसी** : ऐसी लोकतांत्रिक प्रणाली जो चिन्हों, प्रतीकों तथा सांकेतिक भाषा से अभिज्ञेय हो। सूचना-विज्ञान व सूचना प्रौद्योगिकी के संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक वैचारिक श्रेणी ।

# इकाई 11 उन्नत कृषि में जनसंचार माध्यमों का योगदान

**इकाई की रूपरेखा**


11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कृषि विकास क्यों?

11.2.1 प्रोत्साहन एवं प्रेरणा

11.2.2 शुरुआत

11.4 रेडियो

11.5 अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का योगदान

11.6 दूरदर्शन

11.6.1 फिल्म प्रभाग

11.6.2 कृषि विस्तार सेवा

11.7 समाचार पत्र एवं पत्रिकाए

11.7.1 कंप्यूटर

11.7.8 मौसम विभाग

11.8 संस्थाए

11.9 स्थिति आज की

11.10 सारांश

11.11 निबंधात्मक प्रश्न


## 11.0 उद्देश्य

उद्देश्य उन्नत कृषि में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों का योगदान किस प्रकार किया जा सकता है? इसकी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत इकाई में की गई है । आप जनसंचार के विभिन्न माध्यमों - समाचारपत्र, पत्रिकाए, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म तथा अन्य जनसंचार माध्यम से भली- भांति परिचित हो चुकें हैं । इन माध्यमों ने उन्नत कृषि में क्या परिवर्तनकारी भूमिका अपनाई है । इन्हीं की व्याख्या यहां की गई है ।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जानेंगे कि

- कृषि का विकास जरूरी क्यों?
- विशेषज्ञ गांव की ओर
- जनसंचार के विभिन्न माध्यम और कृषि विकास
- सहकारी संस्थाओं का योगदान
- आज की स्थिति

## 11.1 प्रस्तावना

पारम्परिक खेती में मानव श्रम का उपयोग अधिक था । फिर भी उन्नत कृषि आदानों और विधियों की ग्रामीण क्षेत्रों में जानकारी और पहुंच के अभाव में उत्पादकता और उत्पादन की स्थिति नैराश्यपूर्ण थी । भारत जैसे विकासशील देशों का बहुसंख्यक किसान सपरिवार चौबीस घंटे कृषि कार्य में जुटकर भी, भर पेट रोटी भी नहीं जुटा पाता । अन्य भौतिक संसाधन तो सपना है, इस पीड़ादायक त्रासदी से निजात दिलाने के लिए कृषि विस्तार सेवा का जाल भारत में बुना गया । इसमें इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया, कम्प्यूटर, पारम्परिक लोक कलाएं और सम्पर्क एवं संवाद प्रक्रिया मुख्य उपकरण बने । प्रयोगशाला से खेत तक कृषि ज्ञान के स्थानान्तरण और नवीनतम कृषि आदानों की जानकारी दूरस्थ गाँवों तक पहुंचने में, इन्होंने क्रांतिकारी भूमिका का निर्वहन किया ।

मिट्टी पानी की जांच, उन्नत बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयां, कम पानी से अधिक फसल से लेकर कटाई, तुडाई, वर्गीकरण, पैकजिंग, परिवहन मण्डी, परिज्ञान सेवा, सही समय पर सही तरीकें से विपणन तक की प्रक्रियाएं कहां और क्यों श्रेष्ठ है और कैरो किफायती मिल सकती है? कृषि उत्पादों का भण्डारण प्रसस्करण और निर्यात की क्या रणनीति हो? इंटरनेट और गाँवों की चौपालों पर 'कृषक संवाद' से कृषि विकास की लम्बी यात्रा शुरू हुई, जो निरन्तर है । उन्नत कृषि के लिए जनसचार तकनीक के इस योगदान पर चर्चा इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है ।

## 11.2 कृषि विकास क्यों?

कृषि प्रधान देशों का आर्थिक उत्थान मुख्य रूप से कृषि की उन्नति पर निर्भर करता है, क्योंकि मनुष्य की मुख्य आवश्यकताओं में भोजन प्रमुख है । फिर कपड़ा और मकान आते हैं । यदि किसी देश की खाद्यान्न क्षमता उसकी आवश्यकताओं से अधिक है तभी वह अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होगा । यह बात अधिकतर कृषि आधारित देशों पर लागू होती है । स्वतंन्त्रता के समय हमारी स्थिति भी अन्य विकासशील देशों की भांति ही थी तथा अन्न व अन्य वस्तुओं का उत्पादन आवश्यकता से कम था और अकाल व अन्य प्राकृतिक विपदाओं द्वारा क्षति के कारण और कठिनाई सामने आ जाती थी । शिक्षा के क्षेत्र में भी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या कम थी और ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों का अभाव था । ऐसी स्थिति में केवल परम्परागत ढंग से ही खेती हो रही थी और जमींदारी प्रथा के सभी दुष्परिणाम आम कृषक व ग्रामीणों को त्रस्त किए थे ।

भारत सरकार ने पंचवर्षीय विकास योजनाएं बनाते समय यह ध्यान रखा कि जब तक कृषि उत्पादन को प्राथमिकता नहीं दी जाएगी औद्योगिक प्रगति सीमित हो ही पाएगी और खाद्यान्न का आयात एक बोझ बनता जाएगा । अत: कृषिको उन्नत करना प्रमुख माना गया । यों तो कृषि विकास के लिए और भी अनेक कारण हैं, जैसे अधिकतर कारखानों में कृषि उत्पादों का प्रयोग किसी न किसी रूप में होता है । कृषि प्रधान देश के अधिकतर लोगों को काम में लगाये रखना कृषि द्वारा ही सम्भव है । गाँव एक सम्पूर्ण आर्थिक इकाई का काम करता है

तथा किसान को छोड़कर गांव में रहने वाले अन्य लोगों का जीवकोपार्जन उन लघु उद्योगों पर निर्भर करता है जो कृषक एवं अन्य लोगों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित हैं । जैसे - बुनकर, लोहे के उपकरण बनाने वाला, कुम्हार, चर्मकार, सफाई वाले तथा अन्य लोग । अत: अधिक से अधिक लोगों को उन्हीं के गाँव में काम करने व अपना योगदान देने के लिए प्रोत्साहन करने के लिए कृषिका विकास अत्यन्त आवश्यक था । इतना सब होते हुए भी अनेक ग्रामीण लोगों को गाँव छड़कर शहर की ओर विभिन्न कारणों से जाना पड़ा।

### 11.2.1 प्रोत्साहन एवं प्रेरणा

प्रोत्साहन एवं प्रेरणा का आधार बनाने का कार्य सहज नहीं था । इसके लिए (1) सूचना व जानकारी, (2) नए उपकरणों व कृषि विद्याओं की खोज तथा (3) प्रयोग विधि अर्थात् व्यक्तिगत रूप से नई विधियों का प्रयोग करना व करके दिखाना आदि तीनों क्षेत्रों में सतत् रूप से कार्य करना आवश्यक था । आजादी के समय अधिकतर ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति कुछ बडे जमींदारों को छोड़कर दयनीय थी और ऐसी परिस्थिति में उन्हें प्रेरित करना और नई विधि अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना भागीरथी कार्य था । दूसरी ओर सरकार के पास भी साधनों व प्रशिक्षित लोगों का अभाव था क्योंकि अंग्रेजी राज्य में अधिकतर लोग सरकारी दफ्तरों में काम करने के लिए शिक्षा प्राप्त करते तथा कृषि व अन्य क्षेत्रों में कम लोग जाते थे । इसके अतिरिक्त यातायात के साधन, सड़कें व ठहरने आदि की व्यवस्था भी न के बराबर थी, इसलिए आवागमन की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर लोग ग्रामीण क्षेत्रों व छोटे शहरों में जाने में कतराते थे । अखबार, रेडियों व अन्य साधन भी गौण थे । इन सब परिस्थितियों से जूझने की व्यवस्था करना अपने आप में एक बड़ा कार्य था । इन सब समस्याओं के समाधान के बाद यह देखना था कि जो जानकारी किसानों को देनी है क्या उसे प्रयोग करने के साधन उसे उपलब्ध है । या केवल बातों का ही जमा खर्च होकर खानापूर्ति हो जाएगी, जो अधिकतर देखने में आती है ।

### 11.2.2 शुरूआत

शुरूआत में वस्तुस्थिति यह थी कि किसान केवल एक साल में एक फसल लेता था क्योंकि अधिकतर क्षेत्र में फसल वर्षा पर ही आधारित थी । किसानों कीं यह मान्यता थी कि जमीन कुछ समय खाली छोड़ने से एक तो उसमें पानी जमा रहेगा, दूसरा जो लवण फसल के लिए आवश्यक है और पहली फसल ने सोख लिए, वह फिर जमीन में आ जाएंगे और फसल अच्छी होगी । रासायनिक खाद का प्रयोग अभी प्रारम्भ न हुआ था और जैविक खाद व जानवरों के खेत में रात भर बैठाने से जो खाद मिलती उसकी मात्रा भी सीमित थी । ऐसी स्थिति में कृषि वैज्ञानिकों के लिए किसानों को खाद की मात्रा बढाकर दूसरी फसल । फिर शुरूआत कैसे और कहां से की जाए ।

1960 में एक योजना बनी जिसके अनुसार यह निर्णय लिया गया कि किसानों को कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर आमंन्त्रित किया जाए और उन्हें प्रयोगात्मक खेतों में फसल दिखाई जाए व अन्य प्रयोगों में आने वाली वस्तुओं और विधियों की जानकारी दी जाए । योजना के

अनुसार कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केन्द्रों के पास के कुछ क्षेत्रों के गाँवों को चुना गया व प्रत्येक गाँव से एक किसान को बुलाने का निर्णय लिया गया, उन्हें आने की खबर भेजी पर आने वालों की संख्या नगण्य थी और कृषि विशेषज्ञ हताश । कारण स्पष्ट था सरकारी विचारधारा और प्रणाली एवं सामाजिक व्यवहार अलग-अलग हैं । ग्रामीण लोग अधिकतर एक यादों साथियों के साथ जाना पसन्द करते हैं विशेषकर नये स्थान पर । अकेले जाने में उन्हें भय रहता है कि न जाने क्या संकट जा आए और फिर क्या बीते । सरकारी दृष्टिकोण अधिक से अधिक गाँवों में जल्दी संदेश पहुंचना व कागजी कार्यवाही पूरी करना होता है ।

योजना को बदला गया और प्रत्येक गाँव में तीन या चार किसानों को बुलाने का प्रावधान किया । लोगों ने रूचि ली और जानकारी प्राप्त करने के बाद जब वे लोग वापस गए तो साथियों को अपने अनुभव बताए, अन्य लोग उत्साहित हुए और जाने की इच्छा व्यक्त की तथा गए भी पर धीरे-धीरे यह देखा गया कि लोगों का उत्साह कम होता जा रहा है और किसान लोग आना टाल रहे हैं । ऐसा क्यों?

- क्या नई जानकारी लाभप्रद नहीं थी?
- क्या कृषि विशेषज्ञ की बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी?
- क्या जो जानकारी वह प्राप्त कर रहे थे उनका प्रयोग उनके द्वारा सम्भव न था?
- क्या कृषि विशेषज्ञ उनकी आर्थिक दृष्टि एवं क्षमता से परिचित थे?
- कहीं उनकी अवहेलना तो नहीं हुई? या फिर कृषि विशेषज्ञ ने कहीं उन्हें अपने सहायक के भी सहायक को तो नहीं सौंप दिया?
- समझाने की भाषा व शब्दों का चयन उचित था या नहीं?

ऐसे अनेक प्रश्न उठे और योजना बंद हो गई । फिर भी यह एक छाप किसानों पर छोड़ गई।

## 11.3 विशेषज्ञ गांव की ओर

सरकार ने निर्णय लिया कि किसानों को बुलाने के स्थान पर, कृषि विशेषज्ञों को गाँव जाकर उनसे बात करने और उन्हीं के गाँव में उन्हीं के खेत में एक भाग में प्रयोगात्मक रूप से खेती करने के लिए प्रयास करने को कहा जाए। इस समय तक दो पंचवर्षीय योजनाओं के कारण काफी प्रगति हुई थी तथा सड़कें, स्कूल व अन्य साधनों में हुई वृद्धि के कारण विशेषज्ञों का जाना सम्भव था । शहर में दूर कस्बों के पास व बड़े गांवों में विज्ञान केन्द्र स्थापित किये गए । कृषि विशेषज्ञ नियुक्त किए गए । सरकारी वेतन व भत्तों में कमी न आए, इसके लिए इन लोगों को सरकारी तौर पर मुख्य अनुसंधान केन्द्र पर ही माना गया ।

विज्ञान केन्द्र दूर थे, इसलिए इन्हें वहां आने-जाने का किराया व प्रतिदिन का भत्ता अलग से मिलता था । आर्थिक लाभ के कारण इनकी रूचि विज्ञान केन्द्र जाने और काम करने में बनी रही । गाँव वालों ने इन्हें समुचित आदर दिया तथा कृषि विकास का कार्य सुचारू रूप से चल पड़ा । इन विशेषज्ञों की जानकारी ज्यों-ज्यों ग्रामीण लोगों, उनके रहन-सहन, काम के तरीकों, समस्याओं के बारे में जानकारी बढ़ती गई, उनकी संचार प्रक्रिया भी बदलती गई । हरितक्रांति के समय इस योजना का महत्वपूर्ण योगदान रहा ।

## 11.4 रेडियो

विश्व का पहला रेडियो प्रसारण 1916 में अमरीका में हुआ । 1942 में ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन की स्थापना हुई । 1 जनवरी 1927 को इसका नाम बी.बी.सी हो गया । भारत में ग्रामीण और कृषि विकास बैंक के लिए रेडियों जैसा जनसंचार माध्यम चाहिए । यहां टाइम्स ऑफ इंडिया और डाकतार विभाग ने मिलकर रेडियों कार्यक्रमों का प्रसारण शुरू किया । 1926 में इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी की स्थापना हुई । कंपनी के अन्तर्गत 23 जुलाई, 1927 कों मुम्बई केन्द्र शुरू हुआ । भारत में रेडियों सेवा का नाम 1932 में इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी हो गया । 8 जून, 1936 को इसका नाम आल इंडिया रेडियो हो गया । इसकी ग्रामीण प्रसारण सेवा 16 अक्टूबर, 1938 को शुरू हुई ।

राजस्थान में रेडियों प्रसारण सेवा देशी रियासत जोधपुर के अन्तर्गत 1942 में शुरू हुई। एक किलोवाट का ट्रांसमीटर लगाया गया । इस पर ग्रामीण चर्चाओं से ज्यादा नेशनल वार फ्रन्ट के समाचारों को प्रमुखता दी जाती थी । यह 1943 में बन्द हो गया । आजादी के बाद जनवरी, 1949 में इस स्टेशन का पुनर्जन्म सरदार पटेल की मौजूदगी में राजस्थान ब्राडकास्टिंग स्टेशन के रूप में हुआ । केदार रूप राय इसके निदेशक और अमरनाथ चंचल उपनिदेशक थे । इस पर ग्राम केन्द्रित कार्यक्रमों को भी महत्व दिया गया । आजादी के पहले भरतपुर में भी रेडियो स्टेशन था ।

आल इंडिया रेडियो के अन्तर्गत राजस्थान में पहला केन्द्र व अप्रैल, 1955 को जयपुर में शुरू हुआ । 3 अक्टूबर, 1957 को आल इंडिया रेडियो का नाम आकाशवाणी हो गया । 1 व 50 में देश के प्रमुख रेडियों स्टेशनों से 'देहातीरेडियो गोष्ठी' का प्रसारण शुरू हुआ । जून, 1066 में जयपुर सहित देश के चुनिन्दा आकाशवाणी केन्द्रों पर 'खेती और घर' एकांश शुरू हुआ। तब से अब तक खेतीबाड़ी के लिए किसानों का साथी रहा रेडियो ।

रेडियो की इस विकास-यात्रा को विश्लेषित करें तो पारदर्शी हो जाता है कि अक्टूबर, 1038 में ग्रामीण सेवा की शुरूआत एक तरफा प्रसारण व संचार सेवा पर कृषि विज्ञान केन्द्रों के बाद यह दो तरफा होने लगा. क्योंकि रेडियों के क्षेत्र में छोटे टेप रिकार्डर भी आ गए थे एवं सरकार की ओर से प्राथमिकता मिलने के कारण रेडियो स्टेशन के लोग गाँव जाने लगे । वहां के लोगों की राय रिकॉर्ड करने के साथ गाँव में रहने वाले प्रबुद्ध किसानों की सफलता की कहानियां रिकार्ड कर प्रसारण करने लगे । इन किसानों के अनुभव, सफलता की बात अन्य ग्रामीण भाईयों को जल्दी समझ में आई और कृषि विकास में संचार माध्यम की सफलता दृष्टिगोचर होने लगी ।

शिक्षा के फैलाव के कारण और जागरूकता आई और किसानों ने अपने आस-पास के पढ़े- लिखे लोगों के माध्यम से अपनी समस्याएं लिखनी शुरू की । पत्रोत्तर के कार्यक्रम में वही विशेषज्ञ अधिकतर भाग लेते जिन्हें विस्तार सेवा का अनुभव था या जो इस सेवा में कार्यरत हों । इन विशेषज्ञों की भाषा ग्रामीण ही हो गई थी । उच्चारण एवं संबोधन बदल गया था । जिससे संदेश समझने में किसानों को आसानी हो गई । कृषि में जिन उपकरणों व वस्तुओं की

जरूरत पड़ती है वह भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगे थे । सिंचाई साधन और रासायनिक उर्वरकों के कारखाने बढ़ गए थे । उर्वरकों व बीजों की उपलब्धि कम दामों पर सरकार द्वारा कराई जाने लगी ।

## 11.5 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का योगदान

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना विश्व शांति के उद्देश्य से हुई थी । शांति स्थापित करने के साथ एक उद्देश्य यह भी था कि देश सम्पन्न बने, जिससे एक दूसरे पर हमला नहीं करें । इसी प्रकार यदि एक देश को अपने नागरिकों को बीमारी से बचाना है, तो उसे अपने देश के अलावा अन्य देशों में फैल रहीं बीमारी को समाप्त करने में भी अपना योगदान देना होगा । इसलिए एफ.ए.ओ. यूनेस्को, यूनिसेफ आदि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने कृषि विकास, शिक्षा एवं बाल विकास के कार्यो में योगदान देना आवश्यक समझा ।

एफ.ए.ओ ने रेडियो सेट, टीवी. सेट एवं आर्थिक रूप से प्रगति एवं संचार के लिए सहायता प्रदान की । इस सहायता के अन्तर्गत कुछ उपकरणों का भी प्रावधान था । विकास कार्य सुचारू रूप से चल रहे हैं या नहीं, इसके लिए सम्पर्क व अनुसंधान सुविधा भी थी । जिसके अन्तर्गत किसानों व अन्य लाभ उठाने वाले लोगों और कार्यकर्ताओं से सम्पर्क कर यह जान सकें कि योजना सफलता पूर्वक चल रही है या नहीं । इस सब कार्य को करने वाले लोग भारतीय ही थे । केवल अनुदान एफ. ए. ओं. का था ।

रूढ़िवादी और परम्परागत तन्त्र में फंसे लोग. अपनी परिपाटी को छोड़कर नई प्रणाली नहीं अपनाऐंगे या उनमें परिवर्तन नहीं करेंगे. जैसी धारणाएं कोरिया. चीन औ अन्य विकासशील देशों में निर्मूल सिद्ध हुई और यही भारत में भी सिद्ध हुआ । इसके पीछे जो मुख्य कारण सामने आया वह था स्त्री शिक्षा व जागरूकता । आजादी के समय देश में 68 प्रतिशत लोग कृषि में संलग्न थे और इसमें भी अधिक मात्रा महिलाओं की थी । अत: यह आवश्यक था कि महिलाओं और युवा वर्ग को यदि समझाया जा सके तो पुरुषों को समझाना आसान होगा । इसी विचारधाराको सामने रखते हुए दो योजना अर्न्तराष्ट्रीय सहायता से लागू की गई । ये थी आई. आर.डी.पी और आई.ए.डी.पी । इसी प्रकार बाल विकास व महिला विकास कार्यक्रम भी प्रारम्भ किए गए । इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए संचार माध्यम बहुत कारगर सिद्ध हुआ । लोगों तक इन कार्यक्रमों की रूपरेखा व इनसे क्या लाभ कैसे उठा सकते हैं आदि के बारे में समुचित जानकारी तो व्यक्तिगत रूप से या फिर पम्पलेट आदि द्वारा दी गई । फिर भी सामयिक जानकारी के लिए सबसे उपयोगी रेडियो ही सिद्ध हुआ । इसका मूल कारण ट्रांजिस्टर का आविष्कार और इसका भारत में सस्ता मिलना था । सम्पूर्ण विकास कार्यक्रम में अधीन मीडियम वेव के छोटे ट्रांजिस्टर किसानों को बांटे गए । सामूहिक रूप रेडियो व टेली क्लब भी खोले गए । कार्यक्रमों की रूपरेखा में भी परिवर्तन आया ।

प्रयोग के रूप में 6 प्रदेशों में पांच-पांच हजार ट्रांजिस्टर सेट पुरूषों और महिलाओं को दिए गए । चौपाल/ पेड़ के नीचे, चर्चा मंडलों की बैठकें आयोजित की गई । अलग-अलग स्थान पर ग्रामीण सी व पुरूषों से विभिन्न सम्बन्धित संस्थाओं के कार्यकर्ता संदेह निवारण करते । स्कूलों के लिए अलग चर्चा मंडल थे । दूरदर्शन के टेलीकल्ब भी इसी का एक रूप थे । विशेषज्ञों

की यह मान्यता है कि आजादी के पहले पच्चीस वर्ष संचार के जरिये ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण माने जाते हैं ।

## 11.6 दूरदर्शन

इसी समय दूरदर्शन का कृषि दर्शन, महिलाओं का 'घर-बार' बच्चों का शिक्षा के कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया गया । दूरदर्शन की कैमरा टीम प्रतिदिन ग्रामीण क्षेत्र में जाती तथा किसानों और कृषि विशेषज्ञों से संवाद (फिल्मांकन) करके दिखाती । इनमें दिखाया जाता कि किसान व अन्य ग्रामीण लोग वास्तविकता में कैसे उपकरणों व विधियों का प्रयोग करें? टेलीकास्ट का समय यथासंभव किसानों की सुविधानुसार रखा जाता।

उपग्रह दूरदर्शन शैक्षणिक प्रयोग व खेड़ा (गुजरात) के प्रयोग इस दिशा में महत्वपूर्ण मले गए । टीवी. सेट महंगे होने के कारण ग्राम्यजनों की पहुंच के बाहर थे । इसका इस बात से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि लाइसेन्स के आकड़ों के अनुसार 1974 में 1,63,446 टी. वी. सेटों में से नगण्य गांवों में थे । इसका एक कारण यह भी था कि गाव में एक तो बिजली की उपलब्धि कम व अनिश्चित थी और आज भी हैं । दूसरे बिजली की वोल्टेज कम थे जिसके कारण टीवी. सेट जल्दी खरब हो जाते थे और मरम्मत की सुविधा केवल बड़े शहरों में थी तथा बड़ी महंगी । अत: लाभ कम और संकट अधिक था । एक बाधा और थी दूरस्थ गाँवों तक दूरदर्शन की पहुंच बहुत कम थी ।

सरकार की ओर से गाँवों और शहरों के पिछड़े इलाकों में टेली क्लबों में मुफ्त टी. वी. सेट लगाए गए । स्थान अभाव व अन्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, अधिकतर सैट स्कूलों व पंचायत घरों में लगाये गये ।

खेड़ा प्रयोग गुजरात के एक गाँव में छोटा ट्रांसमिटर लगाकर किया गया जो इसरो (इन्डियन स्पेस रिसर्च आर्गेनाइजेशन) ने किया । कार्यक्रम में मुख्य रूप से खेड़ा ग्राम और आसपास के लोग थे जो सम्बन्धित अधिकारियों को अपनी समस्या बताते व निदान पूछते । जिन समस्याओं का समाधान खेड़ा में रहने वाले लोगों के योगदान से हो सका वह तो हो गया पर जहां सरकारी तन्त्र का प्रश्न था वहां आश्वासन तो अनेक मिले पर कार्य नहीं के बराबर ही हो पाया । कुछ समय बाद सम्बन्धित अधिकारियों ने अपनी असफलता को छुपाने के लिए कार्यक्रम में भाग लेना ही बन्द कर दिया । शनै: शनै: कार्यक्रम की उपयोगिता समाप्त सी हो गई ।

एक प्रयोग और हुआ । भारत सरकार ने विकासात्मक कार्यक्रमों को टेलीविजन से दिखाने के लिए सेटेलाइट इस्ट्रक्शनल एक्सपेरीमेन्ट (साइट) योजना बनाई । 30 मई, 1947 को उपग्रह एटी.एस.- 6 छोड़ा गया । दिल्ली में बेस सेन्टर विज्ञान भवन में कार्यक्रम रिकार्ड कर राजस्थान सहित छ: राज्यों में 1 अगस्त, 1975 को 'चौपाल' से टेलीकास्ट शुरू हुआ । राजस्थान में यह कार्यक्रम जयपुर, कोटा और सवाईमाधोपुर की 27 पंचायत समितियों के 388 गाँवों में दिखाया गया । केन्द्र का नाम था उपग्रह दूरदर्शन केन्द्र । ए.टी.एस- 6 की सेवाऐं बंद होने के कारण टेलीकास्ट बन्द हो गया । मार्च, 1977 में बिना उपग्रह दूरदर्शन केन्द्र दिल्ली में

जयपुर, रायपुर (मध्यप्रदेश) और मुजफ़्फरपुर (बिहार) के लिए शुरू हुआ । पहला कार्यक्रम 'चौपाल' था । पहले कार्यक्रम दिल्ली के विज्ञान भवन में रिकार्ड होते थे, जो बाद में मंडी हाउस में रिकार्ड होने लगे । जयपुर में स्ट्रडिया बनने पर, 6 जुलाई, 1987 को जयपुर दूरदर्शन का पहला कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 'चौपाल' था । इसमें प्रथम कार्यक्रम 'राजस्थान में अकाल को चुनौती' था । प्रस्तुतकर्ता ए. पी. शर्मा और कंपोजर डी. महेन्द्र मधुप थे । उपग्रह दूरदर्शन केन्द्र के दिनों से, कृषि कार्यक्रमों और विशेषज्ञों का नाम प्रस्तावित करने के लिए कृषि सचिव की अध्यक्षता में राजस्थान में सलाहकार समिति कार्यरत थी, यह कई वर्षो तक जयपुर दूरदर्शन के कृषिकार्यक्रमों पर चिन्तन-मंथन का केन्द्र रही । डी. महेन्द्र मधुप इसके निरन्तर सदस्य सचिव रहे ।

वर्ष 2001 से भारत सरकार के ग्रामीण कार्यक्रम मंत्रालय ने ग्रामोन्मूखी योजनाओं पर दूरदर्शन कार्यक्रम बनाने का कार्य निजी ऐजेंसियों के स्थान पर चुनिन्दा दूरदर्शन केंद्रों को सौंपा । इसकी सप्ताह में दो बार 'उजास' के रूप में शुरूआत की गई । दूरदर्शन केंद्रों ने इसके निर्माण में उत्कृष्टता प्रदर्शित की । केन्द्रीय और राज्य सरकारों की ग्रामीण विकास योजनाओं पर लाभान्वितों के नजरिये से विविध कार्यक्रमों में खोज खबर ली गई । जयपुर दूरदर्शन के कार्यक्रम गुणवत्ता और स्वीकार्यता की दृष्टि से प्रशंसनीय रहे । विशेष तौर पर मृदुला बिहारी द्वारा तेरह कड़ियों में लिखा धारावाहिक 'ओर' । महिला सशक्तीकरण के उजास, ग्रामीण विकास योजनाओं और आत्म विश्वास के संगम से बदलते गाँवों की विकास यात्रा को के.के. बोहरा ने आकर्षक प्रस्तुति दी । परिकल्पना अपर्णा वैश ने की थी । दूरदर्शन के ग्रामीण कार्यक्रमों के लिए वर्ष 1999 का अशोक माथुर स्मृति मीडिया सम्मान प्राप्त बोहरा ने 'उजास' कार्यक्रम में ग्रामीणों की मनभावन पत्रिका 'बाता गाँव-गाँव री' समस्या समाधान सूचना और मनोरंजन का गुलदस्ता प्रस्तुत किया। दूरदर्शन के कृषि और ग्रामीण कार्यक्रमों से दर्शक की शिकायत होती है कि ये एक तरफ होते हैं । इस पत्रिका कार्यक्रम में 'समाधान' के अन्तर्गत ग्रामीणों की शिकायतें रिकार्ड कर प्रशासन को सुनाई गई । फिर समाधान को रिकार्ड कर दर्शकों तक पहुंचाया गया । यह दूरदर्शन की सार्थक भूमिका है । 'बाता गाँव-गाँव री' में चलो गाँव की ओर खबरां गाँव-गाँव की. चर्चा, एक सवाल आदि अन्य रोचक पड़ाव थे । 'उजास' में 'सवालां री चौपाल' में बोहरा ने ग्रामीणों की चुप्पी को जवाबों की शक्ल दी । 'उजास' पत्रिका और अन्य कार्यक्रमों में बोहरा के सहयोगी थे राजकिशोर और संजयदत माथुर । 'उजास' में आई. बी. कौल और वासुदेव शर्मा ने ' अरू- बरू' में ग्रामीणों की शिकायतों और पीड़ाओं के महासागर को स्वर दिया । गाँव वालों के सवालों की धार पर थे, ग्रामीण विकास योजनाओं की क्रियान्वयन एजेंसियों के अधिकारी । ' उजास' की प्रभावी प्रस्तुति स्पष्ट संकेत है कि प्रसार भारती निगम दृढ़ इच्छा शक्ति, आवश्यक बजट और समुचित सुविधाएं अपने कार्यक्रम निर्माताओं को दे तो कृषि कार्यक्रमों की शक्ल ही बदल जाएगी ।

इस निष्कर्ष को इस पृष्ठभूमि में लेना होगा कि दूरदर्शन पर ग्रामीण कार्यक्रमों को स्थिति विज्ञापन सेवा शुरू होने के उपरांत अच्छी नहीं रही । शिक्षा और विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों का प्रसारण समय और बजट कम होता गया । शहरी दर्शकों की रूचि ग्रामीण

कार्यक्रमों के लिए उपेक्षा भाव की रही । धन कमाने के ध्येय से शिक्षा और विकास कार्यक्रमों के समय को मनचाहे ढंग से काटा गया । व्यावसायिक हितों के लिए टेलीकास्ट समय ऐसा रखा जाने लगा, जब किसान खेत से नहीं लौटता ।

### 11.6.1 फिल्म प्रभाग

भारत सरकार के फिल्म प्रभाग द्वारा अनेक फिल्में और वृत्तचित्र कृषि, महिला विकास, बाल विकास, शिक्षा व संस्कृति विषयों पर बनाये गए । इन्हें दूरदर्शन, छविग्रह और चलते-फिरते चलचित्र वाहनों से दिखाया गया । भारत सरकार का क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय प्रदर्शनियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के जरिए सूचना और शिक्षा के प्रसार के साथ, इन वृत्तचित्रों और फिल्मों का गाँव-गाँव प्रदर्शन करता रहा ।

### 11.6.2 कृषि विस्तार सेवा

भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के अन्तर्गत विस्तार निदेशालय और विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय राज्यों में कृषि और विपणन एवं निरीक्षण निदेशालयों राज्य में कृषि और विपणन निदेशालयों और कृषि विपणन बोर्डो के सहयोग से, उन्नत कृषि फसलोत्तर और विपणन सेवाओं को गाँव-गाँव तक पहुंचा रहे हैं । खेतों में प्रदर्शन, कृषकों की अध्ययन यात्राओं, गोष्ठियों कृषि मेलों, प्रदर्शनियों, फिल्म प्रदर्शनों और प्रचार साहित्य से कृषकों को सूचना सम्पन्न बनाया जा रहा है । टेलीविजन और रेडियो पर कृषि कार्यक्रमों को सुनने के लिए किसानों को प्रेरित करने के साथ, कठपुतली आदि लोककलाओं से उन्हें उन्नत कृषि ज्ञान पहुंचाया जा रहा है।

राजस्थान राज्य कृषि विपणन बोर्ड ने नवी पंचवर्षीय योजना से गाँवों में 'कृषक संवाद' कार्यक्रम की शुरूआत की । अनेक कार्यक्रमों में भारत सरकार का जयपुर स्थित राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान सहभागी रहा । 'कृषक संवाद' में गाँव के सार्वजनिक स्थल पर डेढ़ दो सौ किसान कृषि वैज्ञानिकों और अधिकारियों से सीधे सवाल जवाब करते हैं । वे जहां नया ज्ञान लेते हैं, योजनाओं की शल्य क्रिया भी निर्भरता से करते हैं । इस संवाद में सहकारिता बैंक और अन्य सम्बद्ध विभागों और संस्थानों के अधिकारी, किसानों की समस्याओं का समाधान करते हैं । इस अनुभव से अन्य गाँवों को लाभान्वित करने के लिए जयपुर दूरदर्शन ने वर्ष 2000-01 में अनेक कार्यक्रमों को रिकार्ड किया । इन पर आधारित तेरह कार्यक्रम उसने प्रादेशिक सेवा और डी डी राजस्थानी से टेलीकास्ट किए । कार्यक्रम निर्माता डी. नरेन्द्र निगम को इन कार्यक्रमों के निर्माण के लिए, वर्ष 2000 का अशोक माथुर स्मृति मीडिया सम्मान प्रदान किया गया ।

## 11.7 प्रिंट मीडिया (समाचारपत्र-पत्रिकाएं)

एक समय था जब दैनिक समाचार पत्रों में गाँव उपेक्षित थे । आज लगभग दैनिक समाचार पत्र कृषि पर साप्ताहिक परिशिष्ट निकालते हैं । वाणिज्य पृष्ठ पर बाजार भाव और कृषि समाचार रोजाना छपते हैं । सामान्य समाचार पृष्ठों पर कृषि समाचार प्रमुखता पाने लगे हैं । राजस्थान के करीब डेढ़ सौ वर्षो के पत्रकारिता इतिहास में पहली बार 20 अगस्त 2001

को राज्य स्तरीय दैनिक ने कृषि समाचार को 'फर्स्ट लीड' दी समाचार पत्र था 'राजस्थान पत्रिका' ' समाचार शीर्षक था 'तीन साल बाद आठ फुटा बाजरां' और संवाददाता थे श्रवण कुमार यादव ।

राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर कृषि-पत्रिका निकालना अब घाटे का सौदा नहीं रहा, यदि ये किसानों के लिए लाभकारी और नियमित हो । कृषि व्यवसाय में लगे लोग इन्हें विज्ञापन सहयोग देने में अपना लाभ समझते हैं ।

### 11.7.1 कंप्यूटर

देश के अनेक प्रदेशों में कस्बों और बड़े गाँवों में, कम्प्यूटर और इसके जरिए इंटरनेट सुविधा से, किसानों को खेतीबाड़ी को फायदे का धंधा बनाने के लिए, लाभकारी सूचनाएं मिलने लगी हैं । इंटरनेट वेबसाइटों पर दुनिया के किसी भी हिस्से में कृषि की स्थिति, उत्पादन, उत्पादकता, मांग और भावों की जानकारी मिल सकती है ।

राजस्थान में कृषि क्षेत्र में प्रथम इंटरनेट वेबसाइट राज्य कृषि विपणन बोर्ड ने वर्ष 2000 में राजकॉम्प से बनवा कर शुरू की । इसमें प्रदेश में उत्पादित खाद्यान्नों, बीज मसालों और औषधीय उत्पादों के क्षेत्र और उत्पादन की जानकारी के साथ, रोजाना के बाजार भाव देखे जा सकते हैं ।

### 11.7.2 मौसम विभाग

उन्नत कृषि में बीज, खाद और आधुनिक उपकरणों के साथ मौसम की भूमिका प्रमुख हैं । पारस्परिक खेती में किसान बादल, कुछ पक्षियों के उड़ने के ढंग, हवा की दिशा व चींटियों आदि को देखकर मौसम का अन्दाजा लगाते थे । मौसम विज्ञान की तरक्की के साथ रेडियो और टेलीविजन से मौसम की जानकारी मिलने लगी ।

बात 1968 की टोकिया (जापान) की है । वहां मौसम विज्ञान पर कार्यशाला थी । इसमें भाग ले रहे एक कार्यक्रम निर्माता का सवाल था कि जापान में टीवी. एवं रेडियों कार्यक्रम की अवधि क्या होती है? जापानी विशेषज्ञों ने कहा पांच सेकन्ड से लेकर कुछ भी । उत्तर जटिल लगा, पर स्पष्टीकरण व व्याख्या साधारण थी । विज्ञापन व नाम का संकेत पांच सेकंड का हो सकता है तथा अधिक से अधिक का मापदण्ड कठिन है क्योंकि उनकी परिभाषा में महाभारत व रामायण जैसे धारावाहिक एक कार्यक्रम की परिधि में आते हैं । कुछ और जानकारी प्राप्त करने पर पता चला है कि जापान ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन के एक प्रोड्यूसर पिछले तीस वर्षो से प्रतिपादित एक मिनट का कार्यक्रम प्रसारित करते आ रहे हैं और यह बहु चर्चित कार्यक्रम है । सुनकर अचम्भा भी हुआ और अधिक जानने की उत्कंठा । पूछने पर पता चलता है कि प्रोड्यूसर महोदय प्रात: एक मिनट मौसम की जानकारी देते हैं और कृषक क्या करें, बताते हैं । शोध से पता चलता है कि इनकी दी गई मौसम विषयक भविष्यवाणी की सत्यता नब्बे प्रतिशत है जो किसी भी मौसम विभाग की भविष्यवाणियों से अधिक है।

अब उपग्रह द्वारा मौसम की जानकारी बहुत आसान हो गई है । रिमोट सेन्सिंग से पृथ्वी की परत के नीचे पानी व अन्य खनिज पदार्थो का पता लगा सकते हैं । फिर भी आश्चर्य

इस बात का है कि अधिकतर चैनलो के समाचार मुख्य शहरों के मौसम की बात तो करते है पर उसका किसानों के लिए क्या अर्थ व उपयोग हो सकता है यह उन्हीं पर छोड़ देते हैं ।

## 11.8 सहकारी संस्थाएं

सहकारिता का मूल मंत्र है - 'सब एक के लिए, एक सब के लिए' । उन्नत कृषि के क्षेत्र में राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर सहकारी विभागों और संस्थानों एवं गैर सरकारी सहकारी संस्थाओं ने रीड़ खंभ की भूमिका अदा की है । इफको और कृभको के जरिए न केवल उर्वरकों की जानकारी प्राप्त होती है, अपितु इनके अधिकारी गाँवों में जाकर, कुछ खेतों पर किसानों के साथ प्रयोगात्मक खेती करते हैं । फसलों को मॉडल मानकर, अन्य किसान अनुभव का लाभ उठाते है । सरकारी बैंक कृषि से लेकर निजी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोगी बनते हैं । आदानों की उपलब्धता में ग्राम सेवा सहकारी समितियां विश्वसनीय एजेंसियां हैं ।

भारत में सहकारिता मुक्त कृषि की कल्पना अकल्पनीय है । जिन राज्यों में सहकारी तंत्र मजबूत है, वहां किसान खेत में ही नहीं मण्डी में भी अधिक लाभ के लिए सक्रिय है । महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक में कृषि तंत्र में सहकारी संस्थाएं आदर्श है । महाराष्ट्र में अन्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डॉ. बी.डी. पंवार की सहकारी संरचना और प्रयासों से बनी सहकारी संस्थाएं 'महाग्रंथ' और 'महामेंगो' विश्व बाजार में विश्वसनीयता की प्रतीक है । डॉ. पंवार को भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषि विपणन पुरस्कार से सम्मानित किया । यह पुरस्कार देश में दो ही कृषि विपणन विशेषज्ञों को मिला । गुजरात के 'कृषि विपणन गुरु' शकरलाल गुरु यह पुरस्कार पाने वाले दूसरे विशेषज्ञ हैं । वे सहकारिता को ग्रामीण अर्थ व्यवस्था और जनसंचार का प्रमुख माध्यम मानते हैं । भारत सरकार ने अध्यक्षता में 1992 में कृषि विपणन पर उत्तराधिकार समिति और 2000 में उच्च स्तरीय विशेषज्ञ दल गठित किया । मई, 2001 में प्रस्तुत उनके प्रतिवेदन में उत्पादन, उत्पादकता और विपणन में किसानों और व्यापारियों को दक्ष बनाने के लिए, सहकारी संस्थाओं को सुदृढ़ करने के साथ, प्रशिक्षण और आधुनिकतम कृषि विस्तार प्रणाली पर बल दिया गया । विशेषज्ञ समिति ने दूरदर्शन पर चौबीस घंटे का कृषि चैनल शुरू करने की भी सिफारिश की । समझा जाता है कि उनका प्रतिवेदन दसवी पंचवर्षीय योजना में भारतीय कृषि परिदृश्य का मुख्य आधार बन सकता है ।

## 11.9 स्थिति आज की

भारतीय गाँवों की उन्नति का मुख्य मापदण्ड है लाभकारी खेती । कुशल प्रबंधन से कृषि व्यवसाय । माँग के अनुसार फसल, उसके उत्पादन क्षेत्र और संभावित मात्रा का विश्लेषण। मिट्टी पानी की जांच, आदानों के चयन और क्रय, तुड़ाई, कटाई, श्रेणीकरण, भण्डारण, प्रसंस्करण आदि और बाजार भाव की त्वरित जानकारी, परिवहन में सजगता और श्रेष्ठतम एवं किफायती उपलब्ध तकनीक का उपयोग ।

सचमुच पीरदृश्य बदला है । पहले जहां किसान एक फसल प्रतिवर्ष लेता था वहां दो फसल तो लेता ही है । कहीं तीन और कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब, हरियाणा और उत्तरप्रदेश के

पश्चिमी भाग में चार तक लेता है । पूर्वी भारत में जहां झूम प्रथा से खेती होती है, वहां अब इस प्रथा को समाप्त मान लिया गया है ।

भारत कृषि उत्पादों के निर्यात में निरन्तर बढ़ोतरी की स्थिति में है । यह तब जबकि परिवार कल्याण के आकड़े अपेक्षित सफलता को प्राप्त नहीं कर पाए जिनकों मानकार प्रगति की परिकल्पना की थी । बढ़ती आबादी और प्राकृतिक विपदाओं के बाद भी यह प्रगति कुछ कम नन्ही । यह कृषि वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशालाओं के किए शोध, उन्नत कृषि विधियों और सहकारी एवं गैर सरकारी कार्यक्रमों को दूरस्थ खेतों तक पहुंचाने में जनसंचार माध्यमों के योगदान और किसानों में इनके प्रति स्वीकार्यता से संभव हो सका । इस प्रक्रिया में निरन्तर गुणात्मक बढ़ोतरी उन्नत कृषि और कृषक वर्ग की बढ़ोतरी निर्धारक होगी ।

## 11.10 सारांश

*भारत गांवों का देश है, इसलिए ग्रामीण जनता को ध्यान में रखकर खेती, बागवानी, पशुपालन, ग्रामोद्योग, ग्रामीण प्रशासन, ग्रामीण संस्कृति, ग्रामीण व्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए अधिकाधिक पत्र प्रकाशित किए जाने चाहिए। अब संचार साधन गांवों तक काफी फैल गए हैं, इसलिए शहरों की जगह गाँवों में मिडिया केन्द्र स्थापित होने चाहिए और वही कार्यरत जनसंचार कर्मियों को कृषि ज्ञान का प्रशिक्षण देकर ग्रामोन्मुखी कस्बाई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित किए जाने चाहिए ।*

*हमारे यहाँ सैकडों बोलियां हैं मानक भाषा सब लोग नहीं समझ पाते हैं, इसलिए जनपदीय बोलियों में भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होना चाहिए ताकि लोक संस्कृति को कृषि सेवा के साथ जोड़ा जा सके ।*

## 11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कृषि प्रबंधन के लिए कौन-कौन से जनसंचार माध्यम प्रभावी रहे?
2. कृषि प्रबंधन में रेडियों किसान का साथी रहा । इस उक्ति से आप सहमत हैं क्या?
3. उन्नत कृषि के लिए दूरदर्शन का कृषि-कार्यक्रम कितना लाभकारी रहा?
4. सुदृढ़ सहकारी व्यवस्था के बिना लाभकारी खेती संभव नहीं । इक्कीसवीं सदी में यह कथन कहां तक सार्थक है?
5. दसवीं योजना के अंत तक इंटरनेट और कम्प्यूटरीकरण कृषि क्षेत्र का अविभाज्य हिस्सा बन जाएंगे । यह दावा साकार हो पाएगा क्या?
6. पारम्परिक लोक कलाएं कृषि उत्पादकता बढ़ोतरी और बेहतर भाव दिलवाने में कितनी सहायक हो सकती है?
7. उत्पादन और विपणन में प्रिंट मीडिया की भूमिका का विवेचन करें ।
8. सरकारी कृषि विस्तार सेवा किसान की अपेक्षाओं पर कितनी खरी उतरी?
9. टिप्पणियां लिखें
    1. कृषि और मौसम सम्बन्धी सूचनाएं
    2. आकाशवाणी के कृषि कार्यक्रम

3. राजस्थान में कृषक संवाद
4. कृषि विस्तार सेवा

# विश्वविद्यालय द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की सूची

| | पाठ्यक्रम का नाम | अवधि |
|---|---|---|
| 1. | स्नातक उपाधि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम | 6 माह |
| 2. | भोजन एवं पोषण में सर्टिफिकेट | 6 माह |
| 3. | कम्प्यूटर ज्ञान एवं प्रशिक्षण का प्रारम्भिक पाठ्यक्रम | 6 माह |
| 4. | सर्टिफिकेट इन कम्प्यूटिंग | 6 माह |
| 5. | पंचायती राज प्रोजेक्ट में प्रमाण-पत्र | 6 माह |
| 6. | संस्कृति एवं पर्यटन में प्रमाण-पत्र | 6 माह |
| 7. | महिलाओं में वैद्यानिक बोध में प्रमाण-पत्र | 6 माह |
| 8. | राजस्थानी भाषा एवं संस्कृति में प्रमाण-पत्र | 6 माह |
| 9. | बी.ए.एफ./बी.सी.एफ. (त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम) | 1 वर्ष |
| 10. | एम.ए.(अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, हिन्दी) | 2 वर्ष |
| 11. | एम.बी.ए. | 3 वर्ष |
| 12. | पी.जी.डी.एच.आर.एम. | 1 वर्ष |
| 13. | पी.जी.डी.एफ.एम. | 1 वर्ष |
| 14. | पी.जी.डी.एम.एम. | 1 वर्ष |
| 15. | पी.जी.डी.एल.एल. | 1 वर्ष |
| 16. | टी.एच.एम. | 1 वर्ष |
| 17. | डी.एन.एच.ई. | 1 वर्ष |
| 18. | डी.सी.ओ. | 1 वर्ष |
| 19. | डी.एल.एस. | 1 वर्ष |
| 20. | डी.सी.सी.टी. | 18 माह |
| 21. | बी.जे.(एम.सी.) | 1 वर्ष |
| 22. | एम.जे.(एम.सी.) | 2 वर्ष |
| 23. | बी.लिब. | 1 वर्ष |
| 24. | पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा | 1 वर्ष |
| 25. | बी.एड. | 2 वर्ष |
| 26. | पी.एच.डी. | 3 वर्ष |
| 27. | पी.जी.डी.ई.एस.डी. | 1 वर्ष |